Con. 3. 4.12. 47
750

अंक 4

संख्या 12

मंगलवार
29 जुलाई,
सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. संघीय विधान कमेटी की रिपोर्ट 1

भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 29 जुलाई सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में दस बजे से माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में आरम्भ हुई।

संघीय विधान-कमेटी की रिपोर्ट

खण्ड 18

***अध्यक्ष:** कल हम खण्ड 18 पर विचार कर रहे थे। कुछ संशोधन पेश किये गये थे और कुछ संशोधन पेश नहीं किये गये थे। श्री अनन्तशयनम् आयंगर के नाम से एक संशोधन है। क्या आप उस पर अब विचार करेंगे?

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): श्रीमान्, इसके पूर्व कि हम आज का कार्य आरम्भ करें, क्या मैं यह कह सकता हूं कि राष्ट्रीय झंडे को स्वीकार करने के पश्चात् अब हमें अपने राष्ट्रीय गीत के प्रश्न को भी हल करना है? श्रीमान् अपने पद की हैसियत से आपको जो अधिकार प्राप्त हैं उनको प्रयोग में लाते हुये आपने कृपा करके झंडे के बारे में एक कमेटी नियुक्त की है। श्रीमान् क्या मैं आपसे प्रार्थना करूं कि इसी प्रकार इस सम्बन्ध में भी एक कमेटी नियुक्त की जाये ताकि वह हमारे राष्ट्रीय गीत के प्रश्न पर विचार करे और उसे जल्दी हल कर दे?

***अध्यक्ष:** मैंने इस मामले पर विचार किया है लेकिन मैं अभी तक इसके बारे में कुछ निश्चय नहीं कर पाया हूं। राष्ट्रीय गीत का प्रश्न राष्ट्रीय झंडे के प्रश्न से कुछ अधिक समय ले सकता है और हमें उसके सम्बन्ध में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। इसलिये मुझे स्वयं कुछ जल्दी नहीं है। हम अब पूरक सूची (सप्लिमेंटरी लिस्ट) 2 का संशोधन नं. 15 उठायेंगे। अब वह खण्ड परिवर्धित है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास: जनरल): श्रीमती दुर्गाबाई उसे पेश कर चुकी हैं।

***अध्यक्ष:** श्री अल्लादी का एक संशोधन है। क्या आप उस पर विचार करेंगे?

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान् मैं निम्नलिखित संशोधन पेश करने की अनुमति चाहता हूं:

''18. सर्वोच्च अदालत–एक सर्वोच्च अदालत होगी जिसके विधान तथा अधिकार व न्यायाधिकार वही होंगे जिनकी सिफारिश संघीय न्यायाधीशों से सम्बन्धित कमेटी करे परन्तु वे निम्नलिखित परिवर्तनों और दशाओं के अधीन होंगे:

(क) सर्वोच्च अदालत के किसी न्यायाधीश को अध्यक्ष सर्वोच्च अदालत के चीफ जस्टिस और वहां के ऐसे अन्य न्यायाधीशों और हाईकोर्टों के ऐसे न्यायाधीशों के परामर्श से रखेगा जो इसके लिये आवश्यक समझे जायें।

(ख) कमेटी की रिपोर्ट के पैराग्राफ 15 के दूसरे वाक्य के स्थान में निम्नलिखित रखा जायेगा:

'उनके वेतन की व्यवस्था कानून द्वारा की जायेगी'।

(ग) सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों को हटाने की व्यवस्था निम्नलिखित प्रकार से की जाए:

'भारत की सर्वोच्च अदालत का कोई न्यायाधीश अपने पद से तब तक न हटाया जायेगा जब तक प्रामाणिक दुराचरण या अयोग्यता के आधार पर संघीय पार्लियामेंट की दोनों सभाओं के एक ही अधिवेशन में पद से हटाने के लिये प्रस्ताव करने पर उसे राष्ट्रपति स्वयं न हटाये। इस सम्बन्ध में कार्यविधि निश्चित करने के लिये संघीय कानून अधिक व्यवस्था कर सकता है'।''

श्रीमान्, श्री संतानम् ने कुछ और संशोधन भी पेश किये हैं। ये संशोधन बहुत कुछ एक दूसरे का उद्देश्य पूरा कर देते हैं। लेकिन इनके प्रति मैं अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर देना चाहता हूं। यदि उनका कोई संशोधन मेरे संशोधन से अधिक विस्तृत है तो मैं अपना संशोधन बड़ी प्रसन्नता से वापस ले लूंगा। एक बात मैं बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहता हूं। उद्देश्य यह नहीं है कि सर्वोच्च अदालत के सम्बन्ध में विस्तृत व्यवस्था की जाए। प्रत्येक विधान में केवल सर्वोच्च अदालत के मुख्य-मुख्य अधिकार बता दिए जाते हैं और यह असेम्बली द्वारा पास किये जाने

वाले न्याय-सम्बन्धी कानून पर छोड़ दिया जाता है कि वह विधान में दिये हुए अधिकारों की व्याख्या करे। यह सम्भव नहीं है कि आप सभी आदेशों को विधान में स्थान दें। आप यह संकेत कर सकते हैं कि मूल न्यायाधिकार के संबंध में न्यायाधिकार का शीर्षक वास्तव में क्या है। आप संकेत कर सकते हैं कि अपील सुनने के अधिकार का आधार वास्तव में क्या है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सन् 1935 ई. के विधान-सम्बन्धी कानून में अधिक विस्तृत आदेश रखने का कारण क्या था। इस विधान का उद्देश्य फेडरल कोर्ट को केवल सीमित अधिकार देने का था। दूसरे भारतीय व्यवस्थापिका सभा को उस समय सभी अधिकार प्राप्त नहीं थे। इसलिये पार्लियामेंट ने फेडरल कोर्ट द्वारा प्रयोग में आने वाले सभी अधिकारों की अधिक विस्तृत व्यवस्था की, यद्यपि अन्य राजसंघों की सर्वोच्च अदालतों के विधान में साधारणतया ऐसी व्यवस्था नहीं होती है। इसलिये उन दशाओं में, जैसा कि भारत सरकार के वर्तमान कानून में बताया गया है, कमेटी ने यह बताया कि न्यायाधिकार की सीमा क्या है, मूल न्यायाधिकार की दशा में कौन से अधिकार प्रयोग में आयेंगे और अपील सुनने के अधिकार की दशा में कौन से अधिकार प्रयोग में आयेंगे। कमेटी की वह रिपोर्ट काफी विस्तृत है। उदाहरणार्थ, यह प्रश्न भी उठाया गया है कि सर्वोच्च अदालत को पूरक न्यायाधिकार भी दिया जाना चाहिये कि नहीं। कमेटी की रिपोर्ट में इसकी भी व्याख्या है। इसलिये सर्वोच्च अदालत को पूरक न्यायाधिकार देने के बारे में भविष्य की संघीय व्यवस्थापिका सभा के रास्ते में कोई रुकावट नहीं है, उसे इसका अधिकार होगा। न्यायाधिकार की खास-खास मदें विधान-सम्बन्धी कानून में दी जायेंगी। दूसरे, पूरक न्यायाधिकार का उल्लेख रिपोर्ट में है। इसके अतिरिक्त रिपोर्ट में यह भी दिया गया है कि किन विषयों के सम्बन्ध में यह न्यायाधिकार रियासतों को सौंपा जा सकता है। उन दशाओं में मेरे विचार से यह आदेश उचित ही है। जहां तक सन् 1935 ई. के विधान में न्यायाधीशों को हटाने का सम्बन्ध है, यह अधिकार कौंसिल के सभापति के रूप में सम्राट को सौंपा गया है और सम्राट की सहायतार्थ एक न्यायाधीशों की समिति की भी व्यवस्था है। दुराचरण या दुर्व्यवहार की दशा में कौंसिल के सभापति के रूप में सम्राट को यह अधिकार दिया गया है कि वे संघीय अदालत के किसी न्यायाधीश या भारतीय हाईकोर्टों के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध कोई कार्यवाही करें। यद्यपि कुछ लोगों ने यह राय दी है कि राष्ट्रपति को किसी कौंसिल या न्यायाधीशों की किसी समिति की सलाह से न्यायाधीशों को हटाने का अधिकार होना चाहिये, लेकिन मेरे विचार से इस प्रस्ताव को यह सभा स्वीकार नहीं करेगी। इससे इस देश के चीफ जस्टिस या हाईकोर्टों के चीफ जस्टिस जैसे सर्वोच्च न्यायाधीश केवल इंडियन सिविल सर्विश के नौकरों के समान हो

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

जायेंगे। कल्पना कीजिये कि राष्ट्रपति भारत के चीफ जस्टिस या प्रान्तीय हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस के आचरण के सम्बन्ध में जांच करने के लिये कुछ न्यायाधीशों का एक विशेष कमीशन नियुक्त करेगा। मेरे विचार से इस स्थिति को यह सभा पसन्द नहीं करेगी। यह विशेष आदेश जो मैंने यहां रखा है यानी, ''वह अपने पद से तब तक न हटाया जायेगा जब तक कि प्रामाणिक दुराचरण या अयोग्यता के आधार पर संघीय पार्लियामेंट की दोनों सभाओं के एक ही अधिवेशन में पद से हटाने के लिये प्रार्थना-पत्र देने पर उसे राष्ट्रपति स्वयं न हटाये,'' ब्रिटिश कामनवेल्थ के विभिन्न कानूनों के आदेशों के अनुरूप है। आस्ट्रेलिया, कैनेडा और दक्षिणी अफ्रीका में इसी प्रकार का आदेश है। इंग्लैंड में भी जिस तारीख से बन्दोबस्त का कानून लागू हुआ, दोनों सभाओं के प्रस्ताव द्वारा ही किसी न्यायाधीश को पदच्युत किया जा सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस इस अधिकार का साधारणतया प्रयोग किया जायेगा। इसका प्रमाण यही है कि वहां यह अधिकार कभी प्रयोग में लाया ही नहीं गया है। यह एक सुन्दर आदेश है जिससे दुराचरण तो रुक जाता है परन्तु यह प्रायः प्रयोग में नहीं आता। मुझे इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि भविष्य की भारतीय व्यवस्थापिका सभायें, जिनको यह अधिकार दिया जायेगा, उसी प्रकार गम्भीरता और बुद्धिमता से काम लेंगी जिस प्रकार पार्लियामेंट की महान् सभाएं अन्य अधिकारों के प्रयोग में काम लेती रही हैं। इसीलिये यह आदेश रखा गया है। प्रामाणिक दुराचरण के सम्बन्ध में वे लोग सभा की एक कमेटी नियुक्त कर सकते हैं और यदि संभव हो तो उस पर गुप्त अधिवेशन में विचार कर सकते हैं। परन्तु अन्तिम रूप से इस प्रस्ताव को दोनों सभाओं को स्वीकार करना होगा। इसके उपरान्त कोई न्यायाधीश दुराचरण के लिये पदच्युत किया जा सकता है। किसी न्यायाधीश के पद की अवधि को व्यक्त करने के लिये यह सुन्दर भाषा नहीं है और इसीलिये यह नकार में प्रकट किया गया है। अर्थात् "अपने पद से तब तक न हटाया जायेगा, इत्यादि।'' इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में जिस प्रणाली का अनुसरण किया जाए उसके बारे में संघीय कानून आदेश निर्धारित कर सकता है। आप इस विधान में कार्यविधि निश्चित करने के लिये विस्तृत आदेश नहीं रख सकते। वास्तव में इस प्रकार का आदेश कि ''इस सम्बन्ध में कार्यविधि निश्चित करने के लिये संघीय कानून अधिक व्यवस्था कर सकता है,'' अन्य विधानों में नहीं पाया जाता है लेकिन हमारे यहां लोग आदेशों की विस्तृत व्याख्या करते

हैं और इसीलिये मैंने इस खण्ड को यहां स्थान दिया है। भारत सरकार के वर्तमान कानून में जो विस्तृत आदेश हैं और जिनको, यदि वे हमारे विधान के मुख्य सिद्धान्तों के विरोध में न हों जैसे कि वे स्वतंत्र भारत के लिये जो व्यवस्था की जा रही है उसके विरोध में न हों, तो उनको अपने विधान के न्याय-सम्बन्धी आदेशों में आवश्यक परिवर्तनों के साथ सम्मिलित करने में कोई कठिनाई न होगी। हमारे एक मित्र ने इस आशय का एक आदेश पेश किया है कि किसी न्यायाधीश का वेतन उसके पद की अवधि में कम नहीं किया जा सकता है। भारत सरकार के कानून में यह आदेश है। इस प्रकार हमें विस्तृत आदेश रखने की आवश्यकता नहीं है। हमें आधारभूत सिद्धांतों की ओर ही अधिक ध्यान देना चाहिये जैसे कि (क) न्यायाधिकार (ख) पदच्युत करने के बारे में आदेश। अन्य बातें संघीय कानून और वर्तमान भारत सरकार के कानून के लिये छोड़ देनी चाहियें, जिसके आदेशों को आवश्यक परिवर्तनो के साथ इस विधान में स्थान देने का विचार है। इसी कारण मैंने ''वेतन'' शब्द रखा हैं इसमें वेतन, छुट्टी, भत्ते इत्यादि सम्मिलित किये जा सकते हैं किन्तु इन सब बातों को विधान में स्थान देने की आवश्यकता नहीं है। इन कारणों से मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार कर ले। किन्तु यदि कोई तर्कपूर्ण कारण बताये जाएं तो मुझे अपने ही संशोधन से कोई लिप्सा नहीं है और मैं किसी भी दूसरे संशोधन को उसके स्थान में रखे जाने के लिये तैयार हूं।

***श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि खण्ड 18 की जगह निम्नलिखित रखा जाए:

''सर्वोच्च अदालत–एक सर्वोच्च अदालत होगी जिसके विधान तथा अधिकार व न्यायाधिकार वही होंगे जिनकी सिफारिश संघीय न्यायाधीशों से सम्बन्धित कमेटी करे; सिवाय उन बातों के जो नीचे दी हुई हैं:

(क) सर्वोच्च अदालत के किसी न्यायाधीश को अध्यक्ष सर्वोच्च अदालत के चीफ जस्टिस और वहां के ऐसे अन्य न्यायाधीशों और हाईकोर्टों के न्यायाधीशों के परामर्श से रखेगा जो इसके लिये आवश्यक समझे जाएं।

(ख) पैरा 10 के अनुसार सर्वोच्च अदालत को जो अतिरिक्त न्यायाधिकार दिया जायेगा वह संघीय कानून द्वारा दिया जायेगा।

(ग) सर्वोच्च अदालत के चीफ जस्टिस और अन्य न्यायाधीशों के वेतन कानून द्वारा निश्चित किये जायेंगे और किसी भी न्यायाधीश का वेतन उसके पद की अवधि में कम न किया जायेगा।

[श्री के. सन्तानम्]

(घ) सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों को हटाने की व्यवस्था निम्नलिखित प्रकार से की जायेगी:

'भारत की सर्वोच्च अदालत का कोई न्यायाधीश अपने पद से तब तक न हटाया जायेगा जब तक प्रामाणिक दुराचरण या अयोग्यता के आधार पर संघ पार्लियामेंट की दोनों सभाओं के एक ही अधिवेशन में पद से हटाने के लिये प्रस्ताव करने पर उसे राष्ट्रपति स्वयं न हटाये'।''

श्रीमान्, मैं विनयपूर्वक यह बताना चाहता हूं कि मेरे संशोधन में श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के दोनों खण्ड सम्मिलित हैं और उनके अतिरिक्त उसमें दो और खण्ड हैं। एक तो न्यायाधिकार के सम्बन्ध में है। अदालत सम्बन्धी आदेशों के सम्बंध में निर्णय करने में सर्वोच्च अदालत का न्यायाधिकार ही निस्सन्देह सबसे महत्वपूर्ण विचारणीय विषय है। इस न्यायाधिकार को मैं दो स्थूल भागों में विभाजित करता हूं—यह संघीय न्यायाधिकार और दूसरा असंघीय न्यायाधिकार। संघीय न्यायाधिकार चार कक्षाओं में विभाजित किया जा सकता है। पहली कक्षा मूल और पृथक न्यायाधिकार की है जिसका सम्बन्ध अन्तर्प्रादेशिक झगड़ों या प्रदेशों और संघ के बीच जो झगड़े हों, उनसे है। दूसरी कक्षा के न्यायाधिकार में जो सर्वोच्च अदालत के लिये एक नवीन अधिकार है, मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में अपील सुनने का अधिकार और कुछ मामलों में मूल अधिकार भी सम्मिलित हैं। हमारे विधान में यह एक नये किस्म के न्यायाधिकार की व्यवस्था की जा रही है। उसमें कहा गया है कि मौलिक अधिकारों के संबंध में उसे साधारणतया अपील सुनने का अधिकार होगा, परन्तु यदि किसी क्षेत्र में मौलिक अधिकारों पर विचार करने के लिये कोई प्रबन्ध न हो या कोई उचित अदालत न हो तो इन अधिकारों के सम्बन्ध में सर्वोच्च अदालत का मूल न्यायाधिकार भी हो सकता है। तीसरी कक्षा के अधिकार अपील सुनने के अधिकार हैं जो संघ-विधान की व्याख्या के सम्बन्ध में होंगे और चौथी कक्षा के अधिकार संघीय कानूनों के बारे में होंगे। संघ-अधिकारों की ये कक्षायें प्रान्तों और रियासतों दोनों के संबंध में एक समान हैं और ये सभी अधिकार सर्वोच्च अदालत को प्राप्त होंगे। इस संघीय न्यायाधिकार के अतिरिक्त सर्वोच्च अदालत को दो प्रकार के असंघीय न्यायाधिकार भी प्राप्त होंगे। ये प्रान्तों के ही संबंध में होंगे। उनमें से प्रथम यह है कि प्रान्तीय विधान की व्याख्या के सम्बन्ध में अपील सुनने का अधिकार होगा और दूसरा यह है कि प्रान्तीय कानूनों की व्याख्या के सम्बन्ध में अपील सुनने का अधिकार होगा। यह एक दुख की बात है कि संघीय न्यायाधीशों से सम्बन्धित कमेटी ने यह समझा कि वह रियासतों

के सम्बन्ध में सर्वोच्च अदालत को इसी प्रकार का न्यायाधिकार नहीं दे सकती है। मैं यह नहीं कहता कि वह किसी प्रकार के दबाव से किया जाए, परन्तु मैं रियासतों से यह अपील करता हूं कि यह उन्हीं के फायदे के लिये है कि वे रियासतों के विधानों और रियासतों के कानूनों के बारे में सर्वोच्च अदालत को उसी प्रकार न्यायाधिकार दें, जैसे प्रान्तों ने दिया है। अपने ही रियासतों के विधानों के बारे में लोगों और नरेशों के बीच झगड़े हो सकते हैं और इस सम्बन्ध में रियासतों की हाईकोर्टों का निर्णय लोगों के लिये बाध्य नहीं समझा जा सकता। वे यह सोच सकते हैं कि रियासत के विधान की व्याख्या करने के लिये रियासती अदालत यथेष्ट रूप से निष्पक्ष नहीं हो सकती और वे ऐसा कह सकते हैं कि केवल सर्वोच्च अदालत ही ऐसा निर्णय दे सकती है जिसे नरेश तथा उनकी प्रजा दोनों निष्पक्ष समझें।

इसके अतिरिक्त बहुत-सी रियासतों के कानूनों को केवल प्रान्तों के कानूनों को अदल-बदल कर बनाया गया है। कुछ रियासतों में कानूनों को बारीकी से बनाने के लिये पर्याप्त साधन और यथेष्ट कानूनी विभाग नहीं हैं। वे केवल प्रान्तों के कानूनों को अपना लेते हैं। ऐसी दशा में यदि रियासती अदालत किसी कानून की एक व्याख्या करे और सर्वोच्च अदालत उसकी दूसरी व्याख्या करे तो बड़ी गड़बड़ पैदा हो जायेगी। बहुत खर्च करने और कष्ट उठाने के बाद सर्वोच्च अदालत स्थापित की जा रही है और वह प्रान्तों और रियासतों दोनों की है, और मेरे विचार से यह बहुत ही ना-समझी की बात होगी कि रियासतें केवल प्रतिष्ठा का सवाल उठाकर सर्वोच्च अदालत से पूरा फायदा न उठायें।

खण्ड दस में यह कहा गया है कि:

> ''नि:संदेह किसी भी भारतीय रियासती प्रदेश को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह विशेष समझौता करके ऐसे मामलों के सम्बन्ध में, जिनका उस समझौते में स्पष्टीकरण हो, सर्वोच्च अदालत को अतिरिक्त न्यायाधिकार दे दे।''

मैं यह चाहता हूं कि प्रत्येक भारतीय रियासत को सर्वोच्च अदालत के न्यायाधिकार को उसी प्रकार स्वीकार कर लेना चाहिये जिस प्रकार उसे प्रातों ने स्वीकार किया है। मुझे यह पसन्द नहीं है कि कोई भारतीय रियासती प्रदेश कुछ मामलों के सम्बंध में विशेष समझौता करके सर्वोच्च अदालत को अतिरिक्त

[श्री. के. सन्तानम्]

न्यायाधिकार दे। केवल संघीय व्यवस्थापिका को ही ऐसा न्यायाधिकार देना चाहिये। केवल संघीय व्यवस्थापिका को ही यह अधिकार होना चाहिये कि वह सर्वोच्च अदालत के न्यायाधिकार में किसी प्रकार का परिवर्तन या संशोधन करे।

वेतन के सम्बन्ध में श्री अल्लादी ने जो कहा है कि वह पद की अवधि में कम नहीं किया जाना चाहिये, मैं इससे सहमत हूं। किन्तु वेतन के सम्बन्ध में यहां व्याख्या ही क्यों न कर दी जाए?

मैंने न्यायाधीशों को हटाने के बारे में इसी खण्ड को अपना लिया है, सिवाय इसके कि जो अनावश्यक आदेश है उसे हटा दिया है।

मेरे विचार से मेरा संशोधन अधिक विस्तृत है और मैं आशा करता हूं कि श्री अल्लादी उसे स्वीकार कर लेंगे।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** श्री सन्तानम् ने जो कुछ कहा है उसको दृष्टि में रखते हुये मैं सभा का ध्यान रिपोर्ट के कुछ अंशों की ओर दिलाना चाहता हूं। रिपोर्ट के पैरा 7 में कहा गया है:

> ''यदि संघीय व्यवस्थापिका को किसी मामले में कानून बनाने का अधिकार हो'...।''

***अध्यक्षः** अच्छा तो यह होगा कि अन्य सभी संशोधन विचारार्थ पेश हो जाएं। यदि आप कोई भाषण देने जा रहे हो तो अच्छा यह होगा कि सभी संशोधनों के पेश होने पर आप ऐसा करें।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** श्री सन्तानम् ने अभी जो कुछ कहा उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ बातें कहनी हैं। मैं कोई भाषण देने नहीं जा रहा हूं। रिपोर्ट के कुछ अंशों के सम्बन्ध में ही मैं अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** दूसरे भाषण की इजाजत देना नियमित न होगा।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** श्री सन्तानम् ने जो कुछ कहा उसीके बारे में मैं बोल रहा हूं। मैं अपने संशोधन के बारे में बोलने नहीं जा रहा हूं। इस सभा के सदस्य की हैसियत से मुझे दूसरे सदस्य के संशोधन पर बोलने का अधिकार है। मैं भाषण बाद को दूंगा।

***अध्यक्षः** मुझे उस पर उसी समय विचार करना होगा।

कल खण्ड के प्रस्तावक महोदय ने कोई भाषण नहीं दिया और हम इस पर सहमत हुए थे कि भाषण आज दिये जायेंगे। संशोधनों के प्रस्तावकों ने भी कोई भाषण नहीं दिये। अब इस समय खण्ड के प्रस्तावक और संशोधनों के प्रस्तावक बोल सकते हैं और उसके बाद उन सभी पर बहस हो सकती है। श्री गोपालस्वामी आयंगर, क्या आप इस समय बोलना चाहेंगे?

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान् मेरे विचार से संशोधनों के प्रस्तावक और अन्य वक्ता भी अपने भाषण दे लें। यदि मुझे कुछ कहना होगा तो मैं अन्त में कह लूंगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान् आप देखेंगे कि खण्ड 18 में सर्वोच्च अदालत विषयक कमेटी का उल्लेख है जिसमें अदालत के कार्य, न्यायाधीशों की नियुक्ति और उनको हटाने इत्यादि का विवरण है। इस रिपोर्ट में 15, 16 से अधिक पैराग्राफ हैं जिनमें से प्रत्येक पर टिप्पणी की गई है। इन पैराग्राफों में जो सुझाव दिये गये हैं और जो सिफारिशें की गयीं हैं उनमें हमने संशोधन किये हैं। इसलिये इस खण्ड में जो संशोधन पेश किये गये हैं उन सभी को तथा खण्ड 18 और सर्वोच्च अदालत विषयक कमेटी की रिपोर्ट को नियमित रूप से पेश किया जाए। फिर विभिन्न बातों पर बहस हो सकती है और तब क्रमानुसार उन पर वोट ली जाए।

***अध्यक्षः** जहां तक मैं देख पाया हूं अब खण्ड 18 में कोई ऐसा संशोधन नहीं है जिसकी मुझे सूचना दी गयी हो। केवल आपका एक संशोधन है जो परिशिष्ट के सम्बन्ध में है। आप उसे अब पेश कर सकते हैं।

श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः बिना परिशिष्ट के खण्ड 18 अपूर्ण है। वे अविच्छिन्न हैं। मैं संशोधन नं. 16 पेश नहीं कर रहा हूं। मैं संशोधन नं. 17 पेश करता हूं। मैं संशोधन नं. 18 और संशोधन नं. 19 को भी जो मेरे और श्रीमती दुर्गाबाई के नाम से हैं, पेश नहीं करता। उन्हें श्रीमती दुर्गाबाई पेश करेंगी। मेरा संशोधन इस प्रकार है:

परिशिष्ट के पैरा 9 में ये शब्द रखें जाएं:

(क) प्रिवी कौंसिल का किसी कानूनी मामले में अपील सुनने का न्यायाधिकार इससे समाप्त किया जाता है और वह सर्वोच्च अदालत को दिया जाता है।

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

(ख) प्रिवी कौंसिल को जो अपीलें सुननी हों उन पर सर्वोच्च अदालत विचार करेगी।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** रिपोर्ट में एक और खंड है। खण्ड 3, जिसमें उन मामलों का उल्लेख है जो संघीय अदालत को सुनने हैं। मेरे मित्र का संशोधन यह है कि उस आदेश को निकाल दिया जाए। मैं उन्हें यह सुझाव देता हूं कि इस संशोधन को भाग 11, खण्ड 3 की शर्त लगाकर पेश किया जाए। वह खण्ड इस प्रकार है:

''जब तक इस विधान के अधीन सर्वोच्च अदालत नियमित रूप से स्थापित न की जाए उस समय तक संघीय अदालत सर्वोच्च अदालत समझी जायेगी और वह सर्वोच्च अदालत के सभी कार्य करेगी:

परन्तु शर्त यह है कि इस विधान के प्रयोग में आने के दिन जितने भी मामलों पर संघीय अदालत और प्रीवी कौंसिल की जुडिशियल कमेटी को विचार करना हो उन सब पर उसी प्रकार विचार होगा जैसे कि इस विधान के प्रयोग में न आने पर होता।''

मेरे मित्र के संशोधन में यह कहा गया है कि यह नहीं रहे। इस खण्ड के सम्बन्ध में मैंने भी एक संशोधन पेश किया है। यदि मेरे मित्र के पेश किये हुये संशोधन के बारे में सभा ने कुछ निर्णय कर लिया हो और बाद को मैं अपना संशोधन पेश करूंगा तो यह नियमित न होगा। सभा पहले ही कुछ निर्णय कर चुकेगी। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि भाग 11, खण्ड 3 के बारे में मेरे संशोधन पर इसके साथ ही विचार किया जाए ताकि सभी बातें स्पष्ट हो जायें क्योंकि भाग 11 के पैरा 3 में जो खण्ड बचे हुए हैं उनके बारे में एक विशेष आदेश है। इसलिये मैं यह सुझाव पेश करता हूं कि यदि मेरे मित्र बचे हुए खण्डों के बारे में कोई संशोधन पेश करना चाहते हैं तो उन्हें उसे अलग से पेश करना चाहिये। जैसी भी सूरत हो, मैंने आज सुबह पैरा 3 के बारे में भी एक संशोधन की सूचना दी है। उस पर उनके संशोधन के साथ विचार हो सकता है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास: जनरल): श्रीमान् मैं पूरक सूची के संशोधन नं. 19 को पेश करना चाहती हूं। वह यह है कि:

परिशिष्ट के पैरा 14 में निम्नलिखित जोड़ दिया जाए:

''प्रत्येक न्यायाधीश भारतीय संघ का नागरिक होगा।''

पैरा 14 में न्यायाधीशों के पद की अवधि और नौकरी की दशाओं का उल्लेख है। अध्यक्ष महोदय, मैं चाहती हूं कि प्रत्येक न्यायाधीश भारतीय संघ का नागरिक हो। मैंने केवल खण्ड (क) को पेश किया है। मैं खण्ड (ख) को पेश नहीं कर रही हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर :** श्रीमान् मैं पूरक सूची नं. 2 में दिये हुये अपने संशोधन नं. 20 को नहीं पेश कर रहा हूं। मैं संशोधन नं 21 को पेश करूंगा।

परिशिष्ट में निम्नलिखित जोड़ दिया जाए:

''1. (क) कोई न्यायाधीश राष्ट्रपति को सम्वाद भेजकर अपने पद से इस्तीफा दे सकता है।

(ख) कोई न्यायाधीश दुराचरण या मस्तिष्क या शरीर के दौर्बल्य के कारण इस सम्बन्ध में व्यवस्थापिका की दोनों सभाओं द्वारा राष्ट्रपति को प्रस्ताव भेजने पर पदच्युत किया जा सकता है, परन्तु शर्त यह है कि राष्ट्रपति के चुने हुये हाईकोर्टों के कम से कम 7 चीफ जस्टिसों की एक कमेटी इसकी जांच करेगी और यह रिपोर्ट देगी कि ऐसे किसी कारण से न्यायाधीश पदच्युत किया जाए।

(ग) कोई न्यायाधीश दिवालिया करार होने पर पदासीन न रहेगा।''

इसके सम्बन्ध में श्री अल्लादी कृष्णास्वामी बोल चुके हैं। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं अभी बोलूगा नहीं तो मैं बाद को बोलूंगा।

***अध्यक्ष:** तीसरी सूची में आपके नाम से एक दूसरा संशोधन भी है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मैं उसे भी पेश करता हूँ। रिपोर्ट के परिशिष्ट में निम्नलिखित जोड़ दिया जाए:

''1. (क) सर्वोच्च अदालत का कोई न्यायाधीश राष्ट्रपति को इस्तीफा देकर अपने पद से इस्तीफा दे सकता है।

(ख) सर्वोच्च अदालत का कोई न्यायाधीश दुराचरण या मस्तिष्क या शरीर के दौर्बल्य के कारण, इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति के सर्वोच्च अदालत

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

से कहने पर और काम के लिये हाईकोर्टों या सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों या भूतपूर्व न्यायाधीशों में से उनके एक विशेष ट्रिब्यूनल नियुक्त करने पर वह यह रिपोर्ट दे कि वह न्यायाधीश ऐसे किसी कारण से पदच्युत किया जाए।''

***अध्यक्षः** अब सभी संशोधन पेश हो चुके हैं और उन पर अब बहस हो सकती है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, खण्ड 18 और परिशिष्ट के विभिन्न पैराओं में कई प्रकार के संशोधन पेश किये गये हैं। उन सभी को पांच मदों में विभाजित किया जा सकता है। (1) उनमें से कुछ उस अधिकारी के सम्बन्ध में हैं जो सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों को नियुक्त करेगा; (2) कुछ उस अधिकारी के सम्बन्ध में हैं जिसे एक या अधिक न्यायाधीशों को हटाने का अधिकार है; (3) कुछ सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये आवश्यक योग्यता के सम्बन्ध में है; (4) कुछ इसके बारे में हैं कि कौन वेतन नियत करेगा; और (5) कुछ संघीय अदालत के न्यायाधिकार के बारे में हैं। इन पांच मदों के बारे में संशोधन पेश किये गये हैं।

नियुक्ति के बारे में मैं यह देखता हूं कि इस सम्बन्ध में सभी एकमत हैं कि न्यायाधीशों को नियुक्त करने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया जाए। राष्ट्रपति अपने विवेक से नहीं बल्कि अपने मंत्रियों से सलाह लेकर उन्हें नियुक्त करेगा। इसके अतिरिक्त वह संघीय अदालत के चीफ जस्टिस और हाईकोर्टों के न्यायाधीशों से भी राय ले सकता है। यह हो सकता है कि वह किसी हाईकोर्ट के न्यायाधीश को नियुक्त करना चाहे। ऐसी दशा में वह किसी अन्य हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस या न्यायाधीशों की राय ले सकता है। यह आवश्यक नहीं समझा जा सकता है की प्रांतों और रियासतों की सभी हाईकोर्टों के न्यायाधीशों से सलाह ली जाए। इसलिये उनको इसकी स्वतंत्रता देनी चाहिये कि वह ऐसे न्यायाधीशों से सलाह ले जिन्हें उस न्यायाधीश को जानने का अवसर मिला हो जिसे कि वह सर्वोच्च अदालत के लिये नियुक्त करना चाहे। इस सम्बन्ध में सभी एकमत हैं और यह कोई विवादग्रस्त विषय नहीं है।

जहां तक सर्वोच्च अदालत के किसी न्यायाधीश को हटाने के अधिकार का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में बहुत मतभेद हैं। एक विचार-धारा के लोगों के नेता

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर हैं जिन्होंने यह संशोधन पेश किया है कि व्यवस्थापिका की दोनों सभाओं के राष्ट्रपति के पास प्रस्ताव भेजने पर सर्वोच्च अदालत का कोई भी न्यायाधीश या चीफ जस्टिस पदच्युत किया जा सकता है। मैंने यह संशोधन पेश किया है कि राष्ट्रपति को इसकी स्वतंत्रता है कि वे हाईकोर्टों के कम से कम 7 न्यायाधीशों का एक ट्रिब्यूनल इस सम्बन्ध में जांच करने के लिये बैठायें और वह यह निर्णय करे कि कोई न्यायाधीश कथित दुर्व्यवहार या दुराचरण या इसी प्रकार के अन्य कारण से हटाया जाए या न हटाया जाए। इसके बाद राष्ट्रपति उसे हटा सकते हैं। मैंने इस आशय का एक दूसरा संशोधन भी पेश किया है कि राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश को उस दशा में भी हटा सकते हैं जब इस कार्य के लिये उनकी नियुक्त की हुई न्यायाधीशों की समिति उसके विरुद्ध रिपोर्ट दे। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का संशोधन इस कारण पेश किया गया है कि संघ में अदालती कार्य के सर्वोच्च अधिकारी का भाग्य-विधाता संघीय प्रबन्धकारिणी का अध्यक्ष हो जाता है। यह सच है कि राष्ट्रपति न्यायाधीशों की समिति की रिपोर्ट के आधार पर कार्यवाही करेगा और इस प्रकार राष्ट्रपति का अधिकार सीमित हो जाता है; परन्तु श्री अल्लादी का यह मत है कि यह अधिकार राष्ट्रपति को दिया ही न जाना चाहिये, क्योंकि इससे सर्वोच्च अदालत का न्यायाधीश राष्ट्रपति के अधीन हो जाएगा। इसलिए उन्होंने एक उपाय बताया है और वह यह है कि न्यायाधीश तभी हटाया जाना चाहिए जब व्यवस्थापिका एकमत होकर उनके पास इस आशय का प्रस्ताव भेजे। मैंने बीच का रास्ता लिया है और यह संशोधन पेश किया है कि सर्वोच्च अदालत का कोई न्यायाधीश व्यवस्थापिका की दोनों सभाओं द्वारा राष्ट्रपति के पास प्रस्ताव भेजने पर हटाया जा सकता है परन्तु इस प्रस्ताव के पहले राष्ट्रपति को इस मामले की जांच के लिये हाईकोर्टों के सात न्यायाधीशों की एक समिति नियुक्त कर लेनी चाहिये। यदि वे यह रिपोर्ट दें कि सम्बन्धित न्यायाधीश किसी ऐसे आचरण का दोषी है, जिसके लिये वह पदच्युत किया जा सकता है, तो उस रिपोर्ट की बिनां पर व्यवस्थापिका की दोनों सभायें राष्ट्रपति के पास एक प्रस्ताव भेज सकती हैं या उस रिपोर्ट को अस्वीकार कर सकती हैं। इसलिये इसमें दोनों उपायों का सामंजस्य है। न्यायाधीशों को पदच्युत करने में व्यवस्थापिका का नियंत्रण होगा और यह अधिकार अकेले राष्ट्रपति या न्यायाधीशों की समिति को नहीं दिया जायेगा। जिस प्रकर व्यवस्थापिका की दोनों सभाओं का निर्माण हुआ है उसमें लगभग 600 सदस्य होंगे। आपको स्मरण होगा कि राष्ट्रपति को पदच्युत करने के सम्बन्ध में यह संशोधन पेश किया गया था और स्वीकार भी कर लिया गया था कि जब कभी नीचे की सभा या कोई भी सभा राष्ट्रपति पर न्यायाधीशों के सम्मुख दोषारोपण करके पदच्युत करने का प्रस्ताव करे तो दूसरी

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

सभा एक कमेटी नियुक्त करेगी और उस कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर प्रस्ताव बनाया जाना चाहिये। यह उचित ही है कि एक छोटी-सी समिति किसी संघीय न्यायाधीश के दुराचरण के सम्बन्ध में जांच करने के लिये बैठाई जाए और वह यह सिफारिश करे कि वह हटा दिया जाए। सारी व्यवस्थापिका के लिये, जिसमें लगभग 600 सदस्य होंगे, यह एक कठिन काम होगा कि वह स्वयं इस मामले की जांच करे। इसलिये यह सुझाव करना न्यायोचित है कि न्यायाधीशों की कमेटी की यह रिपोर्ट देने पर ही कि इस मामले में हस्तक्षेप करना उचित है, दोनों सभाओं से कार्यवाही करने के लिये कहा जाये। यह अकेले मेरा सुझाव नहीं है। सप्रू कमेटी ने, जिसके श्री गोपालस्वामी आयंगर एक सदस्य थे, जो रिपोर्ट निकाली है उसमें यह सुझाव किया गया है कि अध्यक्ष को तत्सम्बन्धी ट्रिब्यूनल की रिपोर्ट के अनुसार सर्वोच्च अदालत के किसी न्यायाधीश को पदच्युत करने का अधिकार दिया जा सकता है। यदि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर को सप्रू कमेटी की रिपोर्ट की इस मद से इस कारण आपत्ति है कि इससे अध्यक्ष की रिपोर्ट को स्वीकार या अस्वीकार करने का निरंकुश अधिकार प्राप्त हो जाता है, तो मुझे कोई ऐसा कारण नहीं दिखता जिससे वे इस सम्बन्ध में मेरे संशोधन को स्वीकार न करें, क्योंकि उसमें न्यायाधीशों व शासन-प्रबन्धकर्ताओं के अधिकारों का सम्मिश्रण है।

मेरे संशोधन की दूसरी मद न्यायाधीशों की योग्यता के सम्बन्ध में है। इसमें केवल भारत सरकार के कानून में निर्धारित योग्यता को दुहराया गया है। इसमें श्रीमती दुर्गाबाई ने यह संशोधन पेश किया है कि न्यायाधीश को एक भारतीय नागरिक होना चाहिये। इस सम्बन्ध में प्रस्तावक ने जो कुछ कहा है उससे अधिक और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। अध्यक्ष की योग्यता सम्बन्धी खण्ड में हमने जैसी व्यवस्था की है उसी प्रकार सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीश के सम्बन्ध में भी, क्योंकि वह प्रजातंत्र का रक्षक होगा, हमारे लिये यह व्यवस्था करना आवश्यक है कि वह भारतीय नागरिक होगा। तीसरी प्रकार की योग्यता भी न्यायोचित है और स्वीकार की जानी चाहिये।

चौथी मद वेतन के सम्बन्ध में है। यह राष्ट्रपति के विवेक पर न छोड़ना चाहिये कि वेतन क्या होगा। इस सम्बन्ध में भी मैंने एक संशोधन पेश किया है परन्तु चूंकि श्री सन्तानम् का इसी प्रकार का संशोधन है, इसलिये मैं अपने संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं। जिस समय तक इस पद पर नियुक्त किया हुआ व्यक्ति

पदासीन रहता है उस काल तक व्यवस्थापिका को उसमें कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिये।

अन्तिम संशोधन सर्वोच्च अदालत के न्यायाधिकार के बारे में है। मुझे यह कहते हुए खेद होता है कि श्री सन्तानम् ने इस प्रश्न पर जिस दृष्टिकोण से विचार किया वह सर्वथा ठीक नहीं है। वह ऐसा होना चाहिये कि सर्वोच्च अदालत को सभी मामलों में सर्वोच्च न्यायाधिकार होना चाहिए परन्तु असंघीय कानूनों के सम्बन्ध में रियासतों के पक्ष में अपवाद की व्यवस्था की जानी चाहियें। जहां तक विधान के कानून का सम्बन्ध है सर्वोच्च अदालत को ही उसे निर्धारित करना चाहिये और रियासतें भी उसे मानने के लिये बाध्य होनी चाहिये। ब्रिटिश भारत के सम्बन्ध में सर्वोच्च अदालत ही सबसे ऊंची अदालत है और अन्तर्रियासती मामलों में उसका न्यायाधिकार है तथा सभी प्रान्तीय हाईकोर्टों के सम्बन्ध में उसे अपील सुनने का अधिकार है। हमारी सर्वोच्च अदालत प्रिवी कौंसिल का स्थान ले लेगी जिसे कि अभी तक सभी दीवानी और फौजदारी के मामलों में अपील सुनने का न्यायाधिकार है। प्रिवी कौंसिल का यह न्यायाधिकार सर्वोच्च अदालत को दिया जा सकता है, किन्तु रियासतों के फौजदारी के मामलों के सम्बन्ध में अपील सुनने के न्यायाधिकार पर कुछ प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में मैं एक बात और कहना चाहता हूं। यह कहा गया था कि रियासतें समझौता करके सर्वोच्च अदालत को न्यायाधिकार नहीं दे सकतीं। भारत सरकार के सन् 1935 ई. के कानून में कुछ रियासतों के कुछ दशाओं में और कुछ शर्तों के साथ सम्मिलित होने की व्यवस्था है। यदि समझौते की शर्तों के अनुसार रियासतें संघ में सम्मिलित होते समय सर्वोच्च अदालत को न्यायाधिकार सौंप देती हैं तो उनके समझौतों की शर्तों और दशाओं की ओर अदालतें ध्यान देंगी और उनको अमल में लायेंगी। इसलिये इसी प्रकार के इस आशय के आदेश रखना कि यदि कोई रियासत शर्तों और दशाओं के साथ संघ में सम्मिलित हों तो ये शर्तें और दशायें सर्वोच्च अदालत के न्यायाधिकार की अंग होंगी, न तो गलत है और न अनुचित ही और न यह हमारे अधिकार के परे ही है। सर्वोच्च अदालत बिना इस सम्बन्ध में कोई और कानून बनाये हुये समझौते द्वारा उसको दिये हुये न्यायाधिकार को व्यवहार में ला सकती है। इसमें कोई नवीनता नहीं है। सन् 1935 ई. के कानून में इस प्रकार की व्यवस्था है और उसे स्वीकार किया जा सकता है।

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

जहां तक उन अपीलों का सम्बन्ध है जो इस समय प्रिवी कौंसिल के विचाराधीन हैं, यह सच है कि इस मसविदे के अन्त में अन्तर्कालीन आदेशों में उनके बारे में व्यवस्था है, परन्तु वह व्यवस्था इस प्रकार है कि सभी विचाराधीन अपीलों का फैसला प्रिवी कौंसिल ही को करना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि स्वतंत्रता प्राप्त करने और विधान के प्रयोग में आने के बाद भी प्रिवी कौंसिल को विचाराधीन अपीलों के सम्बन्ध में न्यायाधिकार होना चाहिये। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का यह सुझाव है कि यह मामला उस समय के लिये स्थगित किया जाए जब अन्तर्कालीन आदेशों पर विचार होगा। मैं इस सुझाव से सहमत हूं। मेरी राय में संशोधन की इन पांचों बातों पर एक साथ वोट ली जाए और नियुक्ति करने, पदच्युत करने, योग्यता, वेतन निर्धारित करने और सर्वोच्च अदालत को न्यायाधिकार देने के बारे में जो संशोधन पेश किये गये हैं उनको अलग-अलग न उठाया जाए।

***अध्यक्ष:** मैं कुछ समय की गैर हाजिरी के लिये सभा की आज्ञा चाहता हूं क्योंकि आज श्री जगजीवनराम आ रहे हैं और उनका स्वागत करने के लिये मुझे हवाई अड्डे पर जाना है *(हर्ष ध्वनि)*। मैं श्री वी.टी. कृष्णमाचार्य से प्रार्थना करता हूं कि वे मेरी गैर हाजिरी में सभापति का आसन ग्रहण करें।

(अध्यक्ष महोदय ने इसके बाद अपना आसन छोड़ दिया और उपाध्यक्ष महोदय उस पर आसीन हुए।)

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं माननीय सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि जब मैं माइक्रोफोन पर बोलूं तो वे अपने कानों की चिंता करें। मुझे जोर से बोलने की आदत है और जब मैं माइक्रोफोन पर बोलने लगूंगा तो मेरी आवाज उनको बड़ी कर्णकटु लगेगी। इस क्षमायाचना के साथ मैं अपना भाषण आरम्भ करता हूं।

श्रीमान् मेरे विचार से यह विषय बहुत पेचीदा बना दिया गया है और मैं सभा को यह बताने का प्रयत्न करूंगा कि मुझ जैसा साधारण बुद्धि का मनुष्य इस बहस से क्या समझ सका है। श्रीमान्, मेरी समझ में जब हम सर्वोच्च अदालत को स्थापित कर लेंगे तो प्रिवी कौंसिल समाप्त हो जायेगी और इस समय उसको जो न्यायाधिकार प्राप्त है वह सर्वोच्च अदालत के हाथ में आ जायेगा, परन्तु दीवानी

तथा फौजदारी के मामलों में और दूसरे मामलों में भी फैसला करने में प्रिवी कौंसिल जितनी देर लगाती थी उतनी देर अब सर्वोच्च अदालत नहीं लगायेगी। श्रीमान, यह कहा जाता है कि अदालत में जाना आसान है, परन्तु उसके बाहर निकलना बहुत कठिन है। जब कभी कोई मामला प्रिवी कौंसिल के पास गया हमारा बहुत कुछ अनुभव ऐसा ही रहा। यदि इस प्रकार के विलम्ब को रोकने के लिये कुछ न कहा गया या कुछ न किया गया तो मैं समझता हूं कि अब भी फैसले में उतनी ही देर होगी जितनी कि प्रिवी कौंसिल के दिनों में होती थी। श्रीमान्, इसके बजाय कि कुछ ऐसे वकीलों से इस सभा को सलाह देने को कहा जाए जो विधान के विशेषज्ञ हों या उससे अनभिज्ञ हों, मेरी राय में इस सभा के कुछ ऐसे सदस्य, जो हाईकोर्ट के न्यायाधीश रहे हों, कोई ऐसे उपाय निकालें जिनसे न्याय करने में देर न हो, क्योंकि यह सभी जानते हैं कि न्याय में देर करने का अर्थ न्याय न करना ही होता है।

श्रीमान्, दूसरी बात जो हमारी समझ में आई है वह यह है कि इन न्यायाधीशों को राष्ट्रपति न्यायाधीशों की एक समिति से सलाह लेकर नियुक्त करेगा। इस प्रकार सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों के चुनाव में न्यायाधीशों की समिति का मत प्रधान रहेगा। इसका अर्थ यह है कि निम्न कोटि के न्यायाधीश सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों को नियुक्त करेंगे। हाईकोर्टों के न्यायाधीश पहले यह राय देंगे कि वे किस व्यक्ति को सर्वोच्च अदालत का चीफ जस्टिस बनाना चाहते हैं। यह राय हाईकोर्टों के न्यायाधीश देंगे जो निस्संदेह सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों से निम्न कोटि के होंगे परन्तु मेरे विचार से इसमें कोई दोष नहीं है। जब एक पुलिस का दरोगा भी ऐसे मामलों की जांच कर सकता है, जो उसके ही अफसरों के विरुद्ध पेश किये गये हों और साधारण निर्वाचक भी राष्ट्रपति को चुन सकते हैं, तो हाईकोर्टों के न्यायाधीशों के सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों को नियुक्त करने या उनके नाम पेश करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। वास्तव में मैं स्वयं इसके अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं बता सकता। इसलिये मेरी राय में यह ठीक ही है।

श्रीमान् जैसा कि मैं बहस से समझ पाया हूं, मेरा विश्वास है कि सर्वोच्च अदालत कुछ अवसरों में वैधानिक मामलों के सम्बन्ध में वही कार्य करेगी जो इस समय तक संघीय अदालत करती रही है। यही नहीं वह कुछ कानूनी मामलों के बारे में सरकार को सलाह भी देगी। जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं समझता हूं कि यह एक गम्भीर प्रश्न है। मेरी समझ में नहीं आता कि यदि सर्वोच्च अदालत कुछ कानूनी मामलों के बारे में सरकार को वास्तव में सलाह दे तो आगे चलकर

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

किसी व्यक्ति की सरकार के साथ मुकदमेबाजी होने पर न्यायाधीश किस प्रकार अपने विवेक से काम करेंगे और निष्पक्ष होकर निर्णय करेंगे। मैं यह चाहता हूं कि इसका थोड़ा-बहुत स्पष्टीकरण किया जाए। इन शब्दों के साथ जो संशोधन पेश किया गया है, मैं उसका समर्थन करता हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** श्रीमान्, श्री अनन्तशयनम् आयंगर और श्री सन्तानम् की कुछ बातों का मैं जवाब देना चाहता हूं।

पहली बात यह है कि सर्वोच्च अदालत को विशेष या अतिरिक्त न्यायाधिकार देने के बारे में जो रिपोर्ट सभा की स्वीकृति के लिये पेश की गई है, उसमें व्यवस्था है। रिपोर्ट का खण्ड 7 इस प्रकार है:

> ''यदि किसी मामले के सम्बन्ध में संघीय व्यवस्थापिका को कानून बनाने का अधिकार हो तो स्पष्टत: उसे अपनी इच्छा से बनाये हुये ट्रिब्यूनल को इस सम्बन्ध में न्यायाधिकार देने का भी अधिकार है; और यदि इस काम के लिये वह सर्वोच्च अदालत को चुने तो उसे इस प्रकार दिया हुआ न्यायाधिकार प्राप्त होगा।''

इसलिये यदि आप उस रिपोर्ट को स्वीकार करें तो अतिरिक्त न्यायाधिकार देने के मार्ग में कोई रुकावट नहीं है। जब विधान अन्तिम रूप से निश्चित होगा तो हमें अतिरिक्त न्यायाधिकार देने की व्यवस्था करनी होगी।

इसके अतिरिक्त मेरे मित्र श्री सन्तानम् ने यह कहा कि रिपोर्ट के पैराग्राफ 10 में यह कहा गया है कि निस्संदेह किसी भारतीय रियासती प्रदेश को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह विशेष समझौता करके सर्वोच्च अदालत को अतिरिक्त न्यायाधिकार सौंप दे। इस पैराग्राफ में भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में प्रयोग में आने वाले एक विशेष न्यायाधिकार के बारे में कमेटी ने विचार किया था, जैसे कि संघीय कानून या उस रियासत के अतिरिक्त किसी अन्य प्रदेश के कानून से उत्पन्न होने वाले मामलों के सम्बन्ध में; क्योंकि रियासतें इससे अधिक अधिकार देने के लिये तैयार नहीं थीं। इस अदालत के किसी कानून के वैधानिक औचित्य पर विचार करने के अधिकार के अतिरिक्त यह भी व्यवस्था की गई है कि भारतीय रियासतों को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वे विशेष समझौते के द्वारा अतिरिक्त न्यायाधिकार दे दें। इससे व्यवस्थापिका के अधिकारों को कोई हानि नहीं पहुंचेगी।

कम से कम कमेटी का यह उद्देश्य नहीं है। दो बातें आवश्यक हैं। जहां तक रियासतों का सम्बन्ध है उन्हें पैराग्राफ 9 में बताये हुए न्यायाधिकार के अतिरिक्त पूरक न्यायाधिकार देने के लिये राजी हो जाना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि यह दूसरी शर्त भी रखी गई है कि संघीय व्यवस्थापिका को सर्वोच्च अदालत को यह न्यायाधिकार देने के लिये राजी हो जाना चाहिये। अगर उद्देश्य यही है तो संशोधन की आवश्यकता नहीं रह जाती। यह उद्देश्य नहीं है और न यह हो ही सकता है कि राज्य को बिना व्यवस्थापिका की राय लिये हुये अतिरिक्त न्यायाधिकार देने का स्वतंत्र अधिकार दिया जाए। इसलिये जिस समय विधान का निर्माण होगा तो उस समय ऐसे मामलों के सम्बन्ध में, जिनमें रियासतों की दिलचस्पी हो और जिनके बारे में संघीय व्यवस्थापिका रियासतों से राय लेकर अतिरिक्त न्यायाधिकार देना चाहे, विशेष व्यवस्था करनी होगी। अतिरिक्त न्यायाधिकार की आवश्यकता के सम्बन्ध में श्रीमान्, मेरा यह मत है और रिपोर्ट के दो खण्डों का उद्देश्य भी यही है।

दूसरी बात पार्लियामेंट को न्यायाधीशों को पदच्युत करने का अधिकार देने के सम्बन्ध में है। इसके लिये श्रीमान्, मैं यह कहूंगा कि उपनिवेशों के विधानों में जिस प्रथा की व्यवस्था है उसका अनुकरण किया जाए। यद्यपि न्यायाधीशों की प्रतिष्ठा बढ़ाने की चिंता देखाई देती है, परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि एक प्रकार की विशेष समिति को उनको पदच्युत करने का अधिकार देकर उनको सरकारी नौकरों ही के स्तर पर क्यों लाया जा रहा है? इसीलिये उपनिवेशों के विधानों में 'प्रामाणिक दुराचरण' शब्दों का प्रयोग किया गया है। यद्यपि अंतिम अधिकार दोनों सभाओं का ही होता है, परन्तु खण्ड में यह व्यवस्था है कि आरोपों को साबित किया जाना चाहिये। संघीय कानून इसकी व्यवस्था करेगा कि इनको किस प्रकार साबित किया जाए। अन्य अधिकार-क्षेत्रों में जिन लोगों ने ऐसे मामलों का फैसला किया है उनसे अधिक विस्तार में जाने की हमें आवश्यकता नहीं है। मैं अपने मित्र से पूछता हूं कि क्या संसार के किसी अन्य विधान में न्यायाधीशों को पदच्युत करने के बारे में कहीं इससे अधिक विस्तृत व्यवस्था है? विधान में साधारण सिद्धांत बता दिया गया है और बाद को संघीय कानून में आवश्यक संगठन की व्यवस्था की जायेगी, इस खण्ड का यही आशय है। इसलिये मैं सभा से यही कहूंगा कि वह यह साधारण सिद्धांत स्वीकार कर ले कि राष्ट्रपति को इस देश की सर्वोच्च व्यवस्थापिका से सलाह लेकर पदच्युत करने का अधिकार होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि सर्वोच्च व्यवस्थापिका इस अधिकार का दुरुपयोग करेगी। 'प्रामाणिक दुराचरण' शब्दों में पर्याप्त सुरक्षा है और जो कोई संघीय कानून स्वीकार किया जाये उसमें हम इसके लिये विस्तृत व्यवस्था कर सकते हैं कि किसी

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

न्यायाधीश का अपराध पूर्ण रूप से साबित किया जाए। परन्तु यह एक दूसरा ही विषय है।

मेरे विचार से यह आवश्यक नहीं है कि किसी विधान में न्यायाधीशों के सम्मुख दोषारोपण करने या किसी न्यायाधीश के विरुद्ध आरोप लगाने के लिये विस्तृत व्याख्या की जाए। आप इसे किसी भी विधान में न पायेंगे। जर्मन विधान में भी जो विशेष रूप से विस्तारपूर्ण है, आप इस प्रकार की व्यवस्था न पायेंगे। न आपको यह बन्दोबस्त के कानून या ब्रिटिश पार्लियामेंट के बाद के कानूनों ही में मिलेगा, जिनमें न्यायाधीशों को पदच्युत करने का उल्लेख है। इसलिये चूंकि आप न्यायाधीशों का बहुत आदर कर रहे हैं इसलिए भी आपको चार या पांच न्यायाधीशों की एक समिति सर्वोच्च अदालत के चीफ जस्टिस के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये नहीं बिठानी चाहिये। क्या आप वास्तव में भारत के चीफ जस्टिस की प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं? मुझे इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि आप ऐसा चाहते हैं। परन्तु किसी को पदच्युत करने का अधिकार होना चाहिये और इसीलिये आपने यह अधिकार सर्वोच्च पार्लियामेंट को दिया है, परन्तु यह निरंकुश रूप से नहीं दिया गया है। परन्तु इसे साधारण चिरपरिचित तथा परम्परागत प्रथाओं के अनुसार प्रयोग में लाना चाहिये। यह किसी एक सभा के विवेकाधीन नहीं है कि वह किसी न्यायाधीश को पदच्युत करे। इस सम्बन्ध में सार्वभौम अन्तिम अधिकार पार्लियामेंट की दोनों सभाओं को ही दिया जायेगा। श्रीमान्, मेरे संशोधन का यही आशय है।

अब जो दूसरी बात कही गयी है उसके बारे में मैं कुछ शब्द कहूंगा। मैं आपसे यह स्मरण रखने के लिये कहता हूं कि आप भारत सरकार के कानून से कुछ आदेश ले रहे हैं। सन् 1935 ई. के भारत सरकर के कानून के अनुसार आप किसी न्यायाधीश के पद की अवधि में उसके वेतन को कम नहीं कर सकते हैं और मुझे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि जिन सज्जनों को आप विधान का मसविदा तैयार करने का काम सौंप रहे हैं वे इस आदेश को नये विधान में स्थान देने की चिंता करेंगे। मैं सदस्यों से कहूंगा कि वे इस विधान में किसी न्यायाधीश-सम्बन्धी कानून को नियमित रूप से स्थान न दें। मुझे अपने संशोधन से कोई विशेष लिप्सा नहीं है। मैं इसे सभा की इच्छा पर छोड़ता हूं कि वह इसे स्वीकार करे या अस्वीकार करे, परन्तु मुझे आशा है कि अनावश्यक आदेशों को स्थान नहीं दिया जायेगा।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** श्रीमान्, मैंने यह संशोधन पेश किया था कि प्रत्येक न्यायाधीश भारतीय संघ का नागरिक होगा। अध्यक्ष महोदय, निस्संदेह मैं यह समझती हूं कि मुझे इस प्रश्न पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मुझे आशा है कि यह सभा इस प्रश्न के महत्व को समझेगी और मुझसे सहमत होगी। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जायेगा तो उसका प्रभाव यह होगा कि न्यायाधीशों का चुनाव कोई विदेशी नहीं कर सकेगा। मैं केवल दो चार शब्द कहना चाहूंगी। केवल वह भारतीय नागरिक, जो भारतीय उपनिवेश के प्रति कर्तव्यपालन की प्रतिज्ञा करेगा, इस पद पर नियुक्त होने योग्य समझा जायेगा और कोई भी विदेशी, चाहे वह कितना ही प्रतिष्ठित क्यों न हो और कितना ही कानून का ज्ञाता क्यों न हो, इस पद पर नियुक्त होने योग्य कभी भी न समझा जायेगा। मेरे संशोधन का यह प्रभाव होगा। अध्यक्ष महोदय, हम संघ के सम्बन्ध में और प्रांतों के गवर्नरों के सम्बन्ध में इस योग्यता को निर्धारित कर चुके हैं। यदि इनके सम्बन्ध में हमने यह व्यवस्था की है तो यह और भी आवश्यक है कि सर्वोच्च अदालत के या हाईकोर्टों के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में भी हम यह व्यवस्था करें, क्योंकि सर्वोच्च अदालत प्रजातंत्र की रक्षक समझी जाती है और वह भारतीय नागरिकों के मौलिक व अन्य अधिकारों की रक्षा करेगी। अपना संशोधन सभा की स्वीकृति के लिये पेश करते हुये मैं सभा से केवल इतना ही कहना चाहती हूं।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** श्रीमान्, मैंने वास्तव में यह समझा था कि संघ की सर्वोच्च अदालत के निर्माण और उसकी कार्यविधि जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न को हल करने में जितना समय लगा है उससे कहीं अधिक समय लगेगा। मेरे विचार से जो संशोधन पेश किए गये हैं, उनमें मुख्य-मुख्य बातें सभा के सामने रख दी गयी हैं। श्री अल्लादी ने जो प्रस्ताव सभा के सामने रखे हैं उनसे मैं साधारणतया सहमत हूं। एक साधारण प्रस्ताव यह है कि नये विधान के सिद्धान्तों को निश्चित करते समय जिनके आधार पर उसका मसविदा तैयार किया जायेगा, हमें न्यायाधिकार या कार्यविधि के सम्बन्ध में अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। इन सिद्धांतों में हमको केवल यह रखना है कि विधान का मसविदा तैयार करते समय किन मुख्य-मुख्य बातों का ध्यान रखा जाए। यह मसविदा सभा के सामने बाद को पेश होगा। श्रीमान्, जहां तक इस अदालत के निर्माण का प्रश्न है मुझे इसकी प्रसन्नता है कि तत्संबंधी कमेटी की रिपोर्ट को सभा ने आमतौर से स्वीकार कर लिया है। मैं इस कमेटी की रिपोर्ट की एक बात की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं। उसमें कहा गया है कि उसने विभिन्न विषयों पर विचार

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

किया है, परन्तु उनमें से कुछ ही को विधान में स्थान दिया जाना चाहिये और अन्य विषयों को न्यायाधीश सम्बन्धी कानून में ही स्थान देना उचित होगा जिसे कि संघीय पार्लियामेंट ही अस्तित्व में आने के बाद स्वीकार कर सकती है। यदि हम इसे ध्यान में रखें तो हम यह समझ जायेंगे कि इस समय विस्तारपूर्वक विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

मैं केवल एक दो बातों को लूंगा। आखिर में जो बात कही गई है उसे मैं पहले लूंगा। श्रीमती दुर्गाबाई ने यह सुझाव पेश किया है कि सर्वोच्च अदालत का प्रत्येक न्यायाधीश भारतीय संघ का नागरिक होगा। साधारणतया इससे किसी को मतभेद नहीं हो सकता है। परन्तु सम्भवत: हमें इस ओर भी ध्यान देना पड़े कि विधान के प्रयोग में आते समय इस अदालत का ढांचा किस प्रकार का है और इस प्रश्न पर भी विचार करना होगा कि संशोधन में यह प्रस्ताव जिस रूप में रखा गया है, उसी रूप में विधान में भी सम्मिलित किया जाए या उससे भिन्न रूप में। मेरा यह सुझाव है कि यह प्रश्न मसविदा तैयार करने वाले पर छोड़ दिया जाए।

श्रीमान् वाद-विवाद के सिलसिले में जो दूसरी बात कही गई थी, वह सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों की नियुक्ति के बारे में है। तत्सम्बन्धी कमेटी ने कुछ प्रस्ताव पेश किये। संघीय विधान-कमेटी ने उनमें परिवर्तन किये और अब हमारे सामने संघीय विधान-कमेटी की सिफारिशों में भी कुछ परिवर्तन करने के लिये प्रस्ताव हैं। अब, जहां तक मैं समझता हूं, न्यायाधीशों को नियुक्त करने के ढंग से श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और श्री संतानम सहमत हैं। संघ का अध्यक्ष उन्हें नियुक्त करेगा। उनको नियुक्त करने के पहले वह ऐसे लोगों से सलाह लेगा जो उम्मीदवारों की योग्यता और उनके कार्य से परिचित होंगे। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह प्रस्ताव किया है कि सर्वोच्च अदालत का कोई न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च अदालत के चीफ जस्टिस और हाईकोर्टों के न्यायाधीशों से सलाह लेकर नियुक्त किया जायेगा जो इसके लिये उपयोगी समझे जायेंगे। श्री सन्तानम् ने भी अपने संशोधन में बहुत कुछ यही प्रस्ताव किया है। इस पर एक आलोचना यह की गई थी कि इसमें चीफ जस्टिस की नियुक्ति की व्यवस्था नहीं है। मेरा विश्वास है कि इस विषय में श्री अनंतशयनम् आयंगर की आलोचना को मैं ठीक समझ पाया हूं। मेरे विचार से श्रीमान्, खण्ड की शब्दावली के अनुसार भी सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीश से तात्पर्य सर्वोच्च अदालत के चीफ जस्टिस से भी है।

खण्ड में सर्वोच्च अदालत के किसी अधीनस्थ न्यायाधीश का उल्लेख नहीं है। जिन लोगों से सलाह ली जायेगी वे चीफ जस्टिस और अमुक-अमुक न्यायाधीश हैं। अवकाश ग्रहण करने वाले चीफ जस्टिस के पदत्याग करने के पहले ही साधारणतया नियुक्ति के सम्बन्ध में निर्णय हो जायेगा। यह कोई अनुचित बात नहीं है। सम्भवत: यह बहुत ही न्यायसंगत होगा कि किसी चीफ जस्टिस या उसके सहयोगियों या अन्य न्यायाधीशों से उनके पदत्याग करने के पहले नये चीफ जस्टिस की नियुक्ति के बारे में सलाह ली जाये। इसलिये श्रीमान्, श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने इस खण्ड को जिस प्रकार रखा है उसमें मेरे विचार से चीफ जस्टिस को नियुक्त करने की प्रणाली भी आ जाती है?

श्रीमान्, दूसरा महत्वपूर्ण विषय सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों को पदच्युत करने के सम्बन्ध में है। इस सम्बन्ध में दो उपाय हैं और उन पर विचार किया जाना चाहिये। इन दो उपायों को बताने के पहले मैं यह कहना चाहता हूं कि सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीश को पदच्युत करने का अवसर शायद ही कभी आये। मुझे तो ब्रिटेन में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि पार्लियामेंट की दोनों सभाओं के प्रस्ताव द्वारा कोई न्यायाधीश पदच्युत किया गया हो। सम्भव है, मैं गलती कर रहा हूं, परन्तु मुझे याद नहीं आता। उपनिवेशों में भी जिनके विधान में इस प्रकार का आदेश है मुझे कोई भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता, जिसमें इस आदेश को प्रयोग में लाने की आवश्यकता पड़ी हो। इसलिये प्रामाणिक दुराचरण के लिये न्यायाधीशों को पदच्युत करने की जो भी प्रणाली आप निश्चित करें वह शायद ही कभी काम में आयेगी और बहुत सम्भव है कि मेरे जीवनकाल में तो काम में न लाई जायेगी, और न उनके जीवनकाल में काम में लाई जायेगी जो इस सभा में मुझसे उम्र में बहुत छोटे हैं। ऐसी अवस्था में मेरी यह इच्छा है कि यह सभा प्रस्तावित दो उपायों पर उनकी उपयुक्तता के आधार पर ही विचार करेगी।

एक उपाय का सुझाव श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने किया है। उसके शब्द इस प्रकार हैं:

> ''भारत की सर्वोच्च अदालत का कोई न्यायाधीश अपने पद से तब तक न हटाया जायेगा जब तब प्रामाणिक दुराचरण या अयोग्यता के आधार पर संघीय पार्लियामेंट की दोनों सभाओं के एक ही अधिवेशन में पद से हटाने के लिए प्रस्ताव करने पर उसे राष्ट्रपति स्वयं न हटाये। इस सम्बन्ध में कार्यविधि निश्चित करने के लिये संघीय कानून अधिक व्यवस्था कर सकता है।''

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने इन शब्दों का आशय समझा दिया है। एक बात जो मुझे बहुत अच्छी लगती है वह यह है कि उसमें सर्वत्र 'नकार' का प्रयोग है। इसमें इसका ध्यान रखा गया है कि न्यायाधीश कोई ऐसा कार्यकर्ता नहीं है कि जिसको पदच्युत करने की बात हम मामूली तौर से सोचें। वे कहते हैं कि कोई न्यायाधीश तब तक न हटाया जायेगा, जब तक अमुक प्रणाली के अनुसार कार्यवाही न की जाए। इस हद तक, मेरे विचार से यह सुझाव उन सुझावों से अच्छा है जो समय-समय पर दिये जाते रहे हैं।

दूसरा उपाय श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने सभा के सामने रखा है। उनके प्रस्ताव के शब्द इस प्रकार हैं:

> ''सर्वोच्च अदालत का कोई न्यायाधीश दुराचरण या मस्तिष्क या शरीर के दौर्बल्य के कारण, इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति के सर्वोच्च अदालत से कहने पर और इस काम के लिये हाईकोर्टों या सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों या भूतपूर्व न्यायाधीशों में से उनके एक विशेष ट्रिब्यूनल नियुक्त करने पर वह यह रिपोर्ट दे कि वह न्यायाधीश ऐसे किसी कारण से पदच्युत किया जाये'।''

सप्रू कमेटी ने इस सम्बन्ध में जो सिफारिशें की हैं, उनमें थोड़ा परिवर्तन करके यह प्रस्ताव पेश किया गया है।

यह निर्णय करने से पहले कि इन दो संशोधनों में से किसको स्वीकार किया जाए, हमें कुछ बातों पर विचार करना होगा। इनमें से एक बात यह है कि यह एक अजीब सा लगता है कि किसी न्यायाधीश को पदच्युत करने के लिये हमें व्यवस्थापिका की दो सभाओं की बैठक करनी पड़े, जिनमें से एक में कुछ नहीं तो 500 से 600 तक सदस्य होंगे और दूसरी में इसके लगभग आधे सदस्य होंगे और तब वह यह प्रस्ताव करे कि किसी न्यायाधीश ने दुराचरण किया है या नहीं किया है और यदि किया है तो वह पदच्युत किया जाए या न किया जाये। श्रीमान, मुझे तो यह प्रतीत होता है कि इस प्रकार की प्रणाली को स्वीकार करने में सदस्यों को रोष होगा। मैं यह इसलिये कह रहा हूं कि साधारण सरकारी नौकरों के मामले

में भी हम उन्हें जनमत से नियुक्त करने या जनमत से पदच्युत करने के सिद्धांत से बहुत दूर चले गये हैं। यदि आप इस देश की सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में एक ऐसे सिद्धांत को लागू करने जा रहे हैं जिसे आप साधारण सरकारी नौकरों के सम्बन्ध में भी लागू करने के लिये तैयार नहीं हैं, तो यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं यह कहूंगा कि इसे न्यायोचित ठहराने के लिये आपको बहुत ही जबर्दस्त कारण देने होंगे। जो दूसरी प्रणाली सुझाई गई है, वह यह है कि इस प्रश्न पर कि किसी न्यायाधीश ने दुराचरण किया है या नहीं और अगर किया है तो उसे पदच्युत किया जाए कि नहीं, राष्ट्रपति एक ऐसे ट्रिब्यूनल की रिपोर्ट पर निर्णय देगा या फैसला करेगा, जिसे वह इस काम के लिये सर्वोच्च अदालत या हाईकोर्टों के वर्तमान या भूतपूर्व न्यायाधीशों में से नियुक्त करेगा। इस प्रकार भी श्रीमान्, वह न्यायाधीश जिस पर दुराचरण का अभियोग लगाया गया हो, फैसले के लिये ऐसे ट्रिब्यूनल के सामने पेश किया जायेगा जिसके कुछ सदस्य देश के न्याय-विभाग में उसके अधीन रहे हुये हों। इसलिये इस प्रणाली के विरुद्ध भी यह बात कही जा सकती है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं यह कहने के लिये तैयार नहीं हूं कि यह उपाय अच्छा है या वह उपाय। क्योंकि आप चाहे जिस प्रणाली को स्वीकार करें, मुझे यह आशा है कि इसको सर्वोच्च अदालत के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध प्रयोग में लाने का सम्भवत: कभी अवसर ही न आयेगा। इसलिये मैं इसे इस सभा पर छोड़ता हूं कि वह जिस प्रणाली को भी चाहे स्वीकार करे। उसे विधान के मसविदे में स्थान दिया जायेगा।

अतिरिक्त न्यायाधिकार के सम्बन्ध में, अर्थात् सर्वोच्च अदालत को दिये जाने वाले रियासतों से सम्बन्धित न्यायाधिकार के बारे में यह बात ठीक है कि यदि रियासतों को इस न्यायाधिकार को देना है या समझौते से इसके लिये राजी हो जाना है तो वास्तव में संघीय कानून द्वारा ही यह न्यायाधिकार सर्वोच्च अदालत को दिया जाना चाहिये। ऐसी अवस्था में श्रीमान्, आपके विचारार्थ मैं यह सुझाव पेश करता हूं कि न्यायाधीशों की नागरिकता और उनको अतिरिक्त न्यायाधिकार देने के सम्बन्ध में जो संशोधन पेश किये गये हैं, उन्हें यदि प्रस्तावक सहमत हों तो इस आश्वासन पर वापस ले लिया जाए कि इस वाद-विवाद में जो प्रश्न उठाये गये हैं उनको विधान का मसविदा बनाते समय ध्यान में रखा जायेगा। श्रीमान्, यदि आप सहमत हों तो सभा के सामने केवल सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों की नियुक्ति सम्बन्धी खण्ड और उनको पदच्युत करने के बारे में जिन खण्डों का प्रस्ताव किया गया है, उन्हें ही पेश किया जाये। इन दोनों प्रश्नों पर निर्णय

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

कर लेने के बाद और यह भी निर्णय कर लेने पर कि हम साधारणतया तत्सम्बन्धी कमेटी की रिपोर्ट को स्वीकार करते हैं, हमें मसविदा तैयार करने के लिये पर्याप्त अधिकृत सामग्री मिल जायेगी।

***उपाध्यक्ष** (श्री वी.टी. कृष्णमाचार्य): पहले मैं सभा के सामने उन संशोधनों को रखूंगा जो इस खण्ड को निकाल देने के सम्बन्ध में हैं। पहला संशोधन श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का है, जो पूरक-सूची 3 के पैरा 7 (ग) में दिया हुआ है:

> ''भारत की सर्वोच्च अदालत का कोई न्यायाधीश अपने पद से तब तक नहीं हटाया जायेगा जब तक प्रामाणिक दुराचरण या अयोग्यता के आधार पर संघीय पार्लियामेंट की दोनों सभाओं के एक ही अधिवेशन में पद से हटाने के लिये प्रस्ताव करने पर उसे राष्ट्रपति स्वयं न हटायें। इस सम्बन्ध में कार्यविधि निश्चित करने के लिये संघीय कानून अधिक व्यवस्था कर सकता है।''

मैं इस संशोधन को सभा के सामने रखता हूं।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** एक और संशोधन है 21 (ख) जिसे श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने पेश किया है। मेरे विचार से उसे पेश करने के लिये जोर नहीं दिया गया है।

अब मैं सभा के सामने श्री अनन्तशयनम् आयंगर का संशोधन 21-1 (क) पेश करता हूं जो पूरक सूची 2 में दिया हुआ है और जो इस प्रकार है:

> ''1 (क) कोई न्यायाधीश राष्ट्रपति को सम्वाद भेजकर अपने पद से इस्तीफा दे सकता है।''

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं सभा के सामने श्री अनन्तशयनम् आयंगर का संशोधन 21-1 (ग) रखता हूं, जो इस प्रकार है:

> ''कोई न्यायाधीश दीवालिया करार होने पर पदासीन न रहेगा।''

संशोधन गिर गया।

उपाध्यक्षः अब मैं सभा के सामने श्री अनन्तशयनम् आयंगर का संशोधन 19 (क) रखता हूं, जो इस प्रकार है:

''प्रत्येक न्यायाधीश भारतीय संघ का नागरिक होगा।''

श्रीमती जी. दुर्गाबाईः श्रीमान्, इस संशोधन को मैंने पेश किया था, परन्तु श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर के आश्वासन को दृष्टि में रखते हुये मैं अपने संशोधन के पेश किये जाने के लिये जोर नहीं देती। परन्तु उसे विधान के मसविदे में स्थान मिल जायेगा।

***उपाध्यक्षः** 19 (क) वापस लिया जाता है। क्या सभा उसे वापस लेने की आज्ञा देती है?

सभा की आज्ञा से संशोधन वापस ले लिया गया।

उपाध्यक्षः अब मैं सभा के सामने श्री संतानम् का संशोधन 8 (ग) रखता हूं जो पूरक सूची 3 में दिया हुआ है:

''(ग) सर्वोच्च अदालत के चीफ जस्टिस और अन्य न्यायाधीशों के वेतन कानून द्वारा निश्चित किये जायेंगे और किसी भी न्यायाधीश का वेतन उसकी पद की अवधि में कम न किया जायेगा।''

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्षः** अब मैं सभा के सामने सूची 2 का संशोधन 17 रखता हूं:

''(क) प्रिवी कौंसिल का किसी कानूनी मामले में अपील सुनने का न्यायाधिकार इससे समाप्त किया जाता है और वह सर्वोच्च अदालत को दिया जाता है;

(ख) प्रिवी कौंसिल को जो अपीलें सुननी हों उन पर सर्वोच्च अदालत विचार करेगी।''

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, मैंने यह सुझाव रखा था कि इसे मैं बाद को पेश करूंगा।

***उपाध्यक्षः** अच्छी बात है, यह संशोधन स्थगित किया जाता है।

अब हम श्री सन्तानम् का संशोधन 8 (ख) उठायेंगे।

***श्री के. सन्तानम्ः** श्रीमान्, मैं इस संशोधन को पेश करने के लिये जोर नहीं देता।

***उपाध्यक्षः** क्या सभा इस संशोधन को वापस लेने की इजाजत देती है?

***माननीय सदस्यः** जी, हां।

संशोधन सभा की स्वीकृति से वापस ले लिया गया।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधित खण्ड पर वोट लूंगा।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** क्या मैं यह बता सकता हूं कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के बारे में जो संशोधन पेश किया गया था वह अभी सभा के सामने नहीं रखा गया।

***उपाध्यक्षः** अब कोई संशोधन नहीं रह गये। मेरे विचार से सभी प्रस्ताव एक समान हैं। वे स्मृति-पत्र के पैराग्राफ के अनुरूप ही है और कोई विशेष अन्तर नहीं है।

अब मैं खण्ड 18 को उसके संशोधित रूप में वोट के लिये रखता हूं।

खण्ड 18 संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया गया।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** उपाध्यक्ष महोदय, कल मैंने यह संशोधन पेश किया था कि खण्ड 18 के साथ खण्ड 18 (क) जोड़ दिया जाए। पूरक सूची में भी वह संशोधन 15 के नाम से रखा गया है। वह इस प्रकार है:

> ''18 (क) किसी नवनिर्मित प्रांत में वहां की व्यवस्थापिका के गवर्नर के पास प्रस्ताव भेजने पर और राष्ट्रपति के उसको स्वीकार करने पर नये हाईकोर्ट स्थापित किये जा सकते हैं।''

***उपाध्यक्षः** क्या कोई सदस्य इस प्रस्तावित खण्ड 18 (क) पर बोलना चाहते हैं?

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** अपने संशोधन के समर्थन में मैं कुछ शब्द कहना चाहती हूं। श्रीमान्, विधान के मसविदे में मैंने कोई ऐसा आदेश नहीं पाया जैसा कि मेरे संशोधन में है। इसलिये मैंने विचार किया कि इसकी आवश्यकता है। संघीय व्यवस्थापिका को जो अधिकार हमने दिये हैं उनके कारण कुछ नये प्रदेश उत्पन्न हो सकते हैं। यह आवश्यक भी हो जायेगा क्योंकि दो प्रदेशों, पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब, का तो इसी समय निर्माण हो गया है। इसलिये इन नव-निर्मित प्रदेशों में हाईकोर्टों की स्थापना के लिये कुछ व्यवस्था होनी चाहिये। इसीलिये मैंने खण्ड 18 (क) जोड़ देने का प्रस्ताव किया है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** मैं इस प्रकार की व्यवस्था की कोई आवश्यकता नहीं समझता, क्योंकि यदि कोई नये प्रांत का निर्माण होगा तो उसी के साथ न्याय-विभाग, व्यवस्थापिका आदि की भी स्थापना हो जाएगी और वे प्रान्तीय विधान और प्रान्तीय संगठन के अंग होंगे। इसलिये यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि एक हाईकोर्ट भी होगा। बिना पृथक न्याय-विभाग और पृथक व्यवस्थापिका के आप साधारणतया किसी प्रान्त की कल्पना भी नहीं कर सकते। इस सम्बन्ध में व्यवस्थापिका को कोई प्रस्ताव पेश करने की आवश्यकता नहीं है। यह प्रान्तीय विधान में रखा जा सकता है कि प्रत्येक प्रान्त में एक हाईकोर्ट होगा। इसलिये जो मसविदा तैयार किया जाए और सिद्धांत में जो परिवर्तन किये जाएं उनके अधीन श्रीमती दुर्गाबाई ने जो कुछ कहा है वह स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु यह आदेश रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। साधारणतया हमारे यहां हाईकोर्ट हैं, परन्तु नई व्यवस्था में उनकी आवश्यकता नहीं भी हो सकती है। मुझसे कहा गया है कि आसाम और उड़ीसा में इनकी आवश्यकता होगी। जब अन्त में विधान तैयार होगा तो यह प्रान्तीय व्यवस्था के अधीन होगा। यदि इसे मान लिया जाये तो मुझे इस खण्ड को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** इस प्रकार का आदेश विधान में आवश्यक है। जहां तक हाईकोर्टों के न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रश्न है, हमने जो प्रांतीय विधान स्वीकार किया है उसमें यह आदेश रखा है कि न्यायाधीशों को राष्ट्रपति, भारत के चीफ जस्टिस, सम्बन्धित प्रान्त के चीफ जस्टिस और अन्य चीफ जस्टिसों से भी सलाह लेकर नियुक्त करेगा। जबकि न्यायाधीशों की नियुक्ति भी संघ और संघ के अध्यक्ष के अधिकार में हैं, तो यह एक अजीब बात है कि नव-निर्मित प्रान्तों में हाईकोर्टों को स्थापित करने वाले अधिकारी का उल्लेख नहीं है। मैं यह पूछता हूं कि हाईकोर्टों को स्थापित करने वाला अधिकारी कौन है? इसकी कोई

[श्री एम. अनंतशयनम आयंगर]

व्यवस्था नहीं की गयी है। क्या यह अधिकार पूर्णतया प्रान्त को ही दिया जाने वाला है और इस सम्बन्ध में क्या केन्द्र की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है? वर्तमान विधान के अधीन कुछ प्रान्तों में स्थापित कई हाईकोर्टों को भारत सरकार का कानून स्वीकृति प्रदान करता है, परन्तु नये हाईकोर्टों के सम्बन्ध में उसमें कहा गया है कि वे सम्राट द्वारा स्थापित किये जा सकते हैं। भारत सरकार के कानून की धारा 219 देखिये। इसलिये हमको यहां इसी समय यह निर्णय करना है कि भविष्य में नये हाईकोर्ट किस अधिकारी द्वारा स्थापित होंगे। श्री अल्लादी की तरह क्या हम यह कह दें कि इस सारे मामले को प्रान्तों के लिये छोड़ देना चाहिये। तब तो किसी प्रान्त में हाईकोर्ट की स्थापना वहां की व्यवस्थापिका के अधिकार में होगी और न्यायाधीशों की नियुक्ति पर संघ के अध्यक्ष का नियंत्रण होगा जैसे कि हाईकोर्ट की स्थापना से यह काम जो अधिक महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ यह है कि कार्यविधि उल्टी तौर से व्यवहार में लाई जाएगी। इस परिस्थिति में मैं आदरपूर्वक कहता हूँ कि मेरी माननीया मित्र श्रीमती दुर्गाबाई ने यह ठीक ही सुझाव रखा है कि किसी नये हाईकोर्ट की स्थापना के सम्बन्ध में प्रांतीय व्यवस्थापिका द्वारा पेश किए हुए प्रस्ताव को स्वीकार करने या अस्वीकार करने का अधिकार अध्यक्ष को प्राप्त होना चाहिये।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं इस संशोधन में कुछ शब्द और जोड़ना चाहती हूं। यह कि:

> ''उड़ीसा और आसाम के नये प्रान्तों में तथा नव-निर्मित प्रान्तों में नये हाईकोर्ट स्थापित किये जाने चाहियें।''

संशोधन का शेष भाग उसी प्रकार रहेगा। मैं यह सिफारिश करती हूं कि यह सभा इस संशोधन को स्वीकार कर ले।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल) श्रीमान्, विनय-पूर्वक मैं भी यह कहना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में श्री अल्लादी के विचारों से मैं भी सहमत नहीं हूं। जैसा कि मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता बता चुके हैं। हमें प्रान्तों में हाईकोर्टों की स्थापना की प्रणाली निर्धारित कर देनी चाहिये। हम सभी जानते हैं कि हाईकोर्टों की स्थापना का कार्य एक दीर्घकालीन कार्य है और यह प्रान्तों पर ही नहीं छोड़ा जा सकता कि वे अपने ही निश्चय और निर्णय से उनको स्थापित करें। यह निश्चय करने के लिये कि कोई प्रदेश इतना बड़ा है, इतना

योग्यता-सम्पन्न है और यह कि उसे इतनी आवश्यकता है कि वहां एक पृथक् हाईकोर्ट स्थापित किया जाए, कोई अधिकारी होना चाहिये और इसके लिये सबसे उपयुक्त संघीय पार्लियामेंट और राष्ट्रपति होंगे। किसी हाईकोर्ट की स्थापना कोई साधारण बात नहीं है और विधान में इस सम्बन्ध में उपयुक्त आदेश या प्रणाली का अभाव वास्तव में एक बहुत बड़ा अभाव होगा। श्रीमान्, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि हमारी महिला सदस्य ने इस अभाव की ओर संकेत किया है और मुझे आशा है कि प्रस्तावित संशोधन स्वीकार कर लिया जायेगा।

***श्री राजकृष्ण बोस** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, इस संशोधन की प्रस्ताविका के प्रति आदर भाव दिखाते हुये मैं यह कहना चाहता हूं कि यह एक ऐसा प्रश्न है जिसको स्टीयरिंग कमेटी ने न तो उठाया और न उस पर विचार किया। चूंकि इस संशोधन से हाईकोर्टों की स्थापना के सम्बन्ध में प्रान्तों के अधिकारों पर प्रभाव पड़ता है और चूंकि यह प्रस्ताव किया गया है कि इन अधिकारों पर केन्द्र का नियंत्रण होगा, इसलिये यह कहा नहीं जा सकता कि इस सम्बन्ध में प्रान्तों के अधिकारों पर इस संशोधन का क्या प्रभाव पड़ेगा। कुछ प्रान्तों के नामों का उल्लेख किया गया था और उनमें से एक उड़ीसा भी था। श्रीमान्, मुझे मालूम है कि कुछ वर्ष पहले उस प्रान्त में हाईकोर्ट स्थापित करने के लिये एक कमेटी नियुक्त की गई थी और उस कमेटी ने एक रिपोर्ट दी थी। उस पर अभी व्यवस्थापिका ने विचार नहीं किया है और अभी कोई निर्णय नहीं किया है। मेरे विचार से यह संशोधन इतना महत्वपूर्ण है कि इसे स्टीयरिंग कमेटी के पास भेजा जाना चाहिये और सभा में अन्तिम विचार के लिये पेश किये जाने के पहले वहां उस पर उचित विचार हो जाना चाहिये। इसलिये मैं प्रस्ताविका महोदय से प्रार्थना करता हूं कि वे इसके लिये राजी हो जायें कि यह मामला स्टीयरिंग कमेटी के सामने रखा जाए ताकि इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करने के पहले हमें उनके विचार मालूम हो जाएं।

***श्री एम.एस. अणे** (दक्षिणी रियासतें): श्रीमान्, इस संशोधन में प्रान्तीय हाईकोर्टों की स्थापना का उल्लेख है और इसलिए यह संघीय न्याय-विभाग के अध्याय के अन्तर्गत न आना चाहिये।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** श्रीमान्, श्री अणे ने जो बात कही है उससे मैं पूर्णतया सहमत हूं। मेरे विचार से प्रस्तावित खंड उस अध्याय में

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

सम्मिलित नहीं किया जा सकता, जिसका शीर्षक ''संघीय न्याय-विभाग'' हो। प्रस्ताव यह है कि नव-निर्मित प्रान्तों में हाईकोर्ट स्थापित किए जाएं। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि जब आप नये विधान के मसविदे को देखेंगे तो आपको सम्भवत: इस आशय का एक आदेश मिलेगा कि प्रत्येक प्रान्त में उसी प्रकार एक हाईकोर्ट होगा, जिस प्रकार संघ के लिये एक सर्वोच्च अदालत होगी, या यदि उसमें उन प्रान्तों में भेद किया जाए जो हाईकोर्ट रख सकते हैं और जो नहीं रख सकते हैं, तो उसमें उन प्रान्तों का नाम होगा जहां हाईकोर्ट वर्तमान हैं और ऐसे प्रान्तों में पृथक् हाईकोर्ट स्थापित करने के बारे में, जहां वे न हों, उसमें आवश्यक अधिकार की व्यवस्था होगी। मेरे कहने का मतलब यह है कि यह कभी नहीं हो सकता कि विधान के प्रान्तीय भाग का आखिरी मसविदा तैयार करते समय इस प्रकार के विषय की ओर ध्यान ही न दिया जाए। जहां तक इस अध्याय का सम्बन्ध है, मेरे विचार से यह संशोधन पूर्णतया अनियमित है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान्, मैं स्टीयरिंग कमेटी का एक सदस्य हूं और मुझे यह मालूम है कि इस सभा में कई ऐसे संशोधन पेश किये गये हैं जो स्टीयरिंग कमेटी के सामने नहीं आये। मैं स्टीयरिंग कमेटी के कार्यक्षेत्र से परिचित हूं। इस विधान के मसविदे या प्रान्तीय विधान के प्रत्येक खण्ड पर उसने विचार नहीं किया। उसके अतिरिक्त अन्य परामर्शदातृ समितियां भी हैं जैसे कि प्रांतीय विधान कमेटी, संघीय विधान-कमेटी इत्यादि। इस खण्ड पर विचार करना स्टीयरिंग कमेटी का काम नहीं है और मुझे इस आपत्ति में कुछ भी बल नहीं मालूम पड़ता कि इसे पहले स्टीयरिंग कमेटी के पास भेजना चाहिये। यदि यह उसके पास भेजा भी जायेगा तो हम कह देंगे कि उस पर विचार करना हमारा काम नहीं है।

जहां तक श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर की इस व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति का सम्बन्ध है कि यह संशोधन इस अध्याय विशेष के अन्तर्गत नहीं आता। मैं यह कहूंगा कि महिला सदस्या के खण्ड 18 (क) का उद्देश्य यह है कि व्यवस्थापिका के प्रस्ताव करने पर राष्ट्रपति हाईकोर्ट की स्थापना करें। यदि हम इसे पूर्णत: प्रान्तीय विधान के क्षेत्र में रख दें और यदि हम यहां यह व्यवस्था न करें कि राष्ट्रपति को समिति के अध्यक्ष के रूप में अपने मंत्रियों से सलाह लेकर निर्णय करने का अन्तिम अधिकार होगा, तो एक स्थान शून्य ही रह जायेगा। केवल एक ही तरफ यानी प्रान्तीय विधान में ही इस प्रकार की व्यवस्था होगी और विधान-सम्बन्धी

कानून के संघीय भाग में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं होगी। चाहे यह खण्ड 18 (क) के रूप में रखा जाए या इस विधान के पहले रखा जाए या बाद को इससे कुछ नहीं बिगड़ता, परन्तु इस विधान में इस प्रकार की व्यवस्था करनी होगी और प्रान्तीय विधान में भी इसी आशय की विस्तृत व्यवस्था करनी ही होगी।

***उपाध्यक्षः** श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर के आश्वासन से मैं यह समझता हूं कि विधान के जिस भाग में भी उचित होगा मसविदा बनाने वाले इस प्रकार की व्यवस्था रखेंगे। इस आश्वासन को दृष्टि में रखते हुये क्या प्रस्ताविका अपने संशोधन पर जोर देती हैं?

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** इस आश्वासन पर मैं अपना संशोधन वापस लेती हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

खण्ड 19

***उपाध्यक्षः** अब हम खंड 19 को उठाते हैं।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** खण्ड 19 इस प्रकार है:

> ''संघ का एक आडिटर जनरल होगा, जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेंगे और वह उसी प्रकार व उन्हीं कारणों से पदच्युत किया जायेगा जिनसे सर्वोच्च अदालत का न्यायाधीश पदच्युत किया जायेगा।''

इस खण्ड में यह सिद्धांत निहित है कि यदि यह वांछनीय समझा जाए कि आडिटर जनरल अपना काम योग्यता से करे तो उसे एक ऐसा अफसर होना चाहिये, जो उस प्रबन्धकारिणी सरकार का कृपाकांक्षी न हो जिसके हिसाब-किताब की उसे जांच करनी हो और इसीलिये उसके पद तथा उसकी प्रतिष्ठा के लिये वैसी ही व्यवस्था की गई है जैसी कि सर्वोच्च अदालत के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में की गई है। श्रीमान्, मेरे विचार से यह विधान का एक बहुत ही आवश्यक खण्ड है।

***उपाध्यक्षः** खण्ड 19 में केवल एक ही संशोधन है और वह श्री मोहनलाल सक्सेना के नाम से पेश है (पूरक सूची नं. 1 की मद 18)।

(संशोधन पेश नहीं किया गया)

***उपाध्यक्षः** क्या कोई सदस्य मूल खण्ड 19 पर बोलना चाहते हैं?

प्रश्न यह है कि खण्ड 19 स्वीकार कर लिया जाए?

खण्ड 19 स्वीकार कर लिया गया।

खण्ड 20

***माननीय श्री ए. गोपालस्वामी आयंगरः** श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि खंड 20 स्वीकार कर लिया जाये। वह खण्ड इस प्रकार है:

''आडिटर जनरल के कर्तव्य तथा उसके अधिकार इस सम्बन्ध में सन् 1935 ई. के कानून का आदेशों के आधार पर होंगे।''

(सूची नं. 2 का संशोधन नं. 337 पेश नहीं किया गया।)

खण्ड 20 स्वीकार कर लिया गया।

खण्ड 21

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि खंड 21 स्वीकार कर लिया जाये। वह इस प्रकार है:

''संघ के लिये पब्लिक सर्विस कमीशन होगा जिसका संगठन व जिसके कर्तव्य इस सम्बन्ध में सन् 1935 ई. के कानून के आदेशों के आधार पर होंगे, सिवाय इसके कि कमीशन के सभापति और सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की सलाह से करेगा।''

***उपाध्यक्षः** श्री पातस्कर के नाम से एक संशोधन है।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

''खण्ड 21 में 'अपने मंत्रियों' शब्दों की जगह 'अपने मंत्रिमंडल' शब्द रखे जायें।'' मैं देखता हूं कि मेरे संशोधन के बाद संशोधन नं. 339 है, जिसका उद्देश्य इन सब शब्दों को निकाल देना है। यदि वह संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो मेरा संशोधन अपने आप ही गिर जाता है। परन्तु यदि इन शब्दों को रखना

ही है तो 'मंत्रियों' शब्द न होना चाहिये बल्कि 'मंत्रिमंडल' शब्द होना चाहिये, क्योंकि खण्ड 10 में, जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं, 'मंत्रिमंडल' शब्द रखा गया है। मैंने केवल एक शाब्दिक संशोधन पेश किया है और यह बाद के संशोधन नं. 339 के भाग्य पर निर्भर है।

(संशोधन नं. 339 और 340 पेश नहीं किये गये।)

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास: जनरल): चूंकि अल्पसंख्यकों की उपसमिति इन मामलों पर विचार कर रही है, इसलिये मैं अपना संशोधन (नं. 341) पेश नहीं करता हूं।

(संशोधन नं. 342 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** श्रीमान्, केवल श्री पातस्कर ने एक संशोधन पेश किया है। वे चाहते हैं कि 'अपने मंत्रियों' शब्दों की जगह 'अपने मंत्रिमंडल' शब्द रखे जायें। यदि श्री शिब्बनलाल सक्सेना ने अपना संशोधन नं. 339 पेश किया होता तो मैं उसे स्वीकार कर लेता। क्योंकि, वास्तव में 'अपने मंत्रियों की सलाह से' शब्द बिल्कुल अनावश्यक हैं। यदि राष्ट्रपति को किसी की नियुक्ति करनी होती है तो संघ-विधान के सिद्धांतों के अनुसार बिना अपने मंत्रियों की सलाह लिये हुये ऐसा करने की स्वतंत्रता नहीं है। परन्तु चूंकि जिस प्रकार शब्द रखे गये हैं उनको निकाल देने का कोई प्रस्ताव नहीं है, इसलिये मेरी समझ में नहीं आता कि मुझे 'मंत्रियों' शब्द की जगह 'मंत्रिमंडल' शब्द रखने के प्रस्ताव को क्यों स्वीकार कर लेना चाहिये?

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के नाम से जो संशोधन है उसे मैं पेश करना चाहता हूं, क्योंकि उससे एकरूपता आ जायेगी। जब कभी 'राष्ट्रपति' शब्द का प्रयोग होता है तो उससे राष्ट्रपति तथा उसका परामर्शदाता मंत्रिमंडल समझा जाता है। इसलिये यदि एकाएक हम किसी खंड में मंत्रियों का उल्लेख करें तो उससे कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। इसलिये स्पष्टता और एकरूपता के लिये यह अच्छा ही होगा कि 'अपने मंत्रियों की सलाह से' शब्द निकाल दिये जायें।

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार से श्री सक्सेना ने इस उद्देश्य से यह संशोधन पेश नहीं किया था। सम्भवत: उनका उद्देश्य बिल्कुल दूसरा ही था।

(इस बीच श्री सक्सेना सभा में उपस्थित हो गये।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं अपना संशोधन नं. 339 पेश करना चाहता हूं, जो इस प्रकार है:

''खण्ड 21 में से 'अपने मंत्रियों की सलाह से' शब्द निकाल दिये जाएं।'' ये शब्द अनावश्यक हैं। राष्ट्रपति को कोई ऐसे अधिकार नहीं दिये गये हैं जिन्हें वह अपने विवेक से प्रयोग में लायेगा। वह हमेशा अपने मंत्रियों की सलाह से काम करेगा, इसलिये इन शब्दों को निकाल दिया जाए।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** अब चूंकि संशोधन पेश हो चुका है, मैं उसे स्वीकार करता हूं।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** इसको दृष्टि में रखते हुए कि संशोधन नं. 339 पेश हो चुका है मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन सभा की इजाजत से वापस ले लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है कि:

खण्ड 21 में से 'अपने मंत्रियों की सलाह से' शब्द निकाल दिये जायें।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है कि:

खण्ड 21 संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया जाए।

खण्ड 21 स्वीकार कर लिया गया।

खण्ड 22

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** मैं खण्ड 22 को पेश करता हूं। वह इस प्रकार है:

''22. अखिल भारतीय नौकरियों की स्थापना की व्यवस्था की जानी चाहिये। जिनके लिये भर्ती और जिनकी नौकरी की दशाओं के नियम संघीय कानून में रखे जायेंगे।''

सभा यह जानती है कि हमारे यहां बहुत काल से अखिल भारतीय नौकरियां हैं। वे हमेशा भारत-मंत्री के नियंत्रण में रही हैं। यह नियंत्रण 15 अगस्त से समाप्त हो जायेगा। प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रान्तीय स्वायत्त शासन के सिद्धांत के अनुसार यह उचित है कि आप ऐसी नौकरी को बनाये रखें जिसके लिये भर्ती अखिल भारतीय आधार पर हुई हो और जो ऐसे अधिकारी के नियंत्रण में हो जिसको संघीय कानून निश्चित करेगा?

आप में से कुछ लोग शायद जानते हैं कि प्रान्तीय मंत्रियों की इस सम्बन्ध में राय जानने के लिये कि अखिल भारतीय एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस की स्थापना कहां तक उचित है, भारत सरकार के गृह विभाग ने क्या कार्यवाही की है। सभी लोग इस सम्बन्ध में सहमत थे और ऐसी नौकरी की स्थापना के लिये कार्यवाही की गई है। इस खण्ड में केवल यह प्रयत्न किया गया है कि जो शासन-प्रबंधात्मक कार्य किया जा चुका है उसे कानून द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाये। इसमें यह व्यवस्था की गई है कि जहां कहीं भी अखिल भारतीय नौकरियां आवश्यक हों उनकी स्थापना के लिये विधान में आदेश होने चाहियें। जहां कहीं आपको देश के अच्छे से अच्छे लोगों को आकर्षित करने की आवश्यकता होगी, उन्हें आकर्षित करने के लिये अखिल भारतीय नौकरियां वांछनीय होंगी और इन लोगों को रखने के लिये आपको प्रान्तीय सीमाओं के परे जाना होगा, भले ही आप इन्हें प्रांतीय सरकारों या संघीय सरकार के अधीन रखना चाहें। इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उठेगा कि क्या ऐसी कार्यवाही प्रान्तीय स्वायत्त शासन के सिद्धान्त के विरुद्ध होगी? और क्या यह उचित न होगा कि सब कुछ प्रान्तीय मंत्रियों के हाथ में छोड़ दिया जाये? इस समय मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि इन उत्तरदायी मंत्रियों को, जिनके हाथ में प्रान्तीय शासन-प्रबन्ध है, इस आवश्यकता का अनुभव हुआ है कि अखिल भारतीय आधार पर भर्ती की जाए और यह एक समझदारी का ही काम होगा कि नये विधान में इस प्रकार की व्यवस्था की जाए।

***उपाध्यक्षः** श्री सन्तानम् ने एक संशोधन पेश किया है।

***श्री के. सन्तानम्ः** श्रीमान्, मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** चूंकि इस खण्ड में और कोई संशोधन पेश नहीं किये गये हैं, मैं इस पर वोट लूंगा।

प्रश्न यह है कि खण्ड 22 स्वीकार कर लिया जाए।

खण्ड 22 स्वीकार कर लिया गया।

खण्ड 22(क)

***उपाध्यक्ष:** एक नये खण्ड 22 (क) की सूचना दी गई है। श्री अनन्तशयनम् आयंगर उसे पेश करें।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** श्रीमान्, मैं उसे पेश करता हूं।

''खण्ड 22 के बाद निम्नलिखित नया खण्ड रखा जाये:

'22 (क) थल, जल और आकाश सेनाओं में भर्ती करने तथा देश-रक्षा की अन्य नौकरियों में भी नियुक्ति करने और नौकरी की दशाओं तथा उन पर नियंत्रण के बारे में विधान में व्यवस्था की जायेगी।

सैनिक या देश-रक्षा की नौकरियों का कमीशन असैनिक सरकारी नौकरियों के कमीशन के आधार पर बनाया जायेगा'।''

श्रीमान्, हमने अभी नौकरियों के सम्बन्ध में अध्याय 6 को पेश किया और उसे स्वीकार कर लिया। खण्ड 21 में एक ऐसे पब्लिक सर्विस कमीशन को संगठित करने की व्यवस्था की गई है, जो भारत सरकार के सन् 1935 ई. के कानून के आदेशों के आधार पर बनाया जायेगा। भारत सरकार के कानून की धारा 266 में पब्लिक सर्विस कमीशन को केवल असैनिक नौकरियों के लिये भर्ती करने का अधिकार दिया गया है। उपधारा (क) इस प्रकार है: ''असैनिक नौकरियों और नागरिक फौजों के सभी मामलों के सम्बन्ध में'' इसलिये खण्ड 21 और 22 केवल नागरिक फौजों ही के बारे में है और अध्याय 6 में देश-रक्षा की नौकरियों के लिये कोई व्यवस्था नहीं की गई है। भारत सरकार के सन् 1935 ई. के कानून के भाग 10 में देश-रक्षा की नौकरियों के लिए भर्ती की व्यवस्था है। चाहे यह जानबूझ कर किया गया हो या अनजाने में, यह विशेष व्यवस्था कानून के मसविदे में शामिल नहीं की गई है। उस अध्याय का पहला भाग देश-रक्षा की नौकरियों के लिये भर्ती के बारे में है और दूसरा भाग असैनिक नौकरियों के लिये नियुक्ति के बारे में है, जिसके लिये एक पब्लिक सर्विस कमीशन स्थापित किया गया है। परन्तु, हमारे विधान के मसविदे में अध्याय 6 केवल असैनिक नौकरियों के लिये नियुक्ति के बारे में है। भारत सरकार के कानून के इस विषय के अध्याय का पहला भाग जिसमें देश-रक्षा की नौकरियों का उल्लेख है, छोड़ दिया गया है। वर्तमान विधान में कमीशन वाले पदों और सम्राट के कमीशन या वायसराय के कमीशन के लिये नियुक्ति सपरिषद् सम्राट की आज्ञाओं के अनुसार होती है। इसके अतिरिक्त साधारण देश-रक्षा की नौकरियों के लिये नियुक्ति का प्रश्न है। अब सपरिषद् सम्राट की आज्ञाओं का क्या होगा? देश-रक्षा की नौकरियां हमारी नौकरियों

का एक महत्वपूर्ण अंग है। देश-रक्षा की नौकरियों की गजेटेड जगहें और सिविलयन जगहें भी बहुत महत्वपूर्ण और उत्तरदायित्वपूर्ण हैं। क्या इन नौकरियों के लिये नियुक्ति के काम को हम विभागों के अध्यक्षों या कमांडर-इन-चीफ और उसके अधीनस्थ अधिकारियों पर छोड़ दें और उन्हें जिस तरह वे चाहें नियुक्ति करने दें? इसमें सन्देह नहीं कि इन जगहों के लिये नियुक्ति के सम्बन्ध में नियम बनाये जायेंगे। परन्तु क्या हम अफसरों की नियुक्ति और सम्राट् का कमीशन देने की सिफारिश करने के लिये पब्लिक सर्विस कमीशन जैसी कोई स्वतंत्र संस्था स्थापित नहीं करेंगे?

श्रीमान्, आज तक जो कोई भी अधिकारी थे उन्हेंने लोगों को सैनिक और असैनिक वर्गों में विभाजित किया, परन्तु पिछले युद्ध में जो असैनिक जातियां भर्ती की गई उन्होंने अच्छी प्रकार साबित कर दिया कि वे सैनिक जातियों के समान ही हैं। परन्तु यदि फिलहाल यह अधिकार केवल अधिकारियों के ही हाथ में छोड़ दिया जाए और देश-रक्षा की नौकरियों के लिये नियुक्ति करने के लिये पब्लिक सर्विस कमीशन जैसी कोई स्वतंत्र संस्था स्थापित न की जाए तो प्रांतवाद को स्थान मिलेगा और कुछ लोगों को तो सेना में भर्ती होने के लिये उत्साहित किया जायेगा और अन्य लोगों को उत्साहित न किया जायेगा। यदि असैनिक नौकरियों के लिये भर्ती के लिये पब्लिक सर्विस कमीशन जैसी एक स्वतंत्र संस्था की आवश्यकता समझी गई है ताकि वह निश्चित रूप से प्रांतों के बीच ठीक बटवारा कर सके तो देश-रक्षा की नौकरियों के कमीशन की और भी अधिक आवश्यकता है। मेरे संशोधन का यही आशय है। मैं यह जानना चाहता हूं कि इस प्रकार का आदेश क्यों नहीं रखा गया और इस विधान में देश-रक्षा की नौकरियों के लिये भर्ती के सम्बन्ध में किसी प्रकार की भी व्यवस्था क्यों नहीं की गई है? जब हम भारत सरकार के कानून के अध्याय 10 को सम्मिलित कर रहे हैं तो यह आवश्यक है कि हम उसे पूरे का पूरा सम्मिलित करें। देश-रक्षा की नौकरियों के लिये नियुक्ति का विषय एक महत्वपूर्ण विषय है और मैं नहीं चाहता कि उसे संघीय व्यवस्थापिका पर छोड़ दिया जाए, चाहे वह कितनी ही अच्छी सभा क्यों न हो। यह हो सकता है कि किसी एक ही दल के हाथ में शक्ति हो। मेरे कहने का उद्देश्य यह है कि किसी एक वर्ग को दूसरे वर्ग पर तरजीह न दी जानी चाहिये। श्रीमान्, मैं सभा की स्वीकृति के लिये यह

[श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर]

प्रस्ताव पेश करता हूं कि पब्लिक सर्विस कमीशन के आधार पर एक देश-रक्षा की नौकरियों का कमीशन भी स्थापित किया जाना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** क्या इस संशोधन पर कोई अन्य सदस्य भी बोलना चाहते हैं?

***माननीय श्री जयपाल सिंह** (बिहारः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अभी जो संशोधन पेश किया गया है उसका मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ समर्थन करता हूं। आप अध्याय 1 से भाग 4 के पैरा 7 में देखेंगे कि हम राष्ट्रपति को संघ की देश-रक्षा की सेनाओं के सर्वोच्च नायकत्व का अधिकार दे चुके हैं। जब आपने 'सर्वोच्च नायकत्व' शब्दों का प्रयोग किया है तो मैं समझता हूं कि आपका उद्देश्य यह है कि राष्ट्रपति अपनी अधीनस्थ सेनाओं के लिये भर्ती की व्यवस्था करेगा। संशोधन में इसका स्पष्टीकरण किया गया है कि देश-रक्षा की सेनाओं के अफसर किस प्रकार नियुक्त किये जायेंगे। अध्यक्ष महोदय, आपको ज्ञात ही है कि इस समय सारे देश में नौकरियों के लिए नियुक्ति करने के कई बोर्ड हैं और पिछले तीन वर्षों से एक में मैं स्वयं काम करता आ रहा हूं। मैं यह जानता हूं कि नियुक्ति की वर्तमान प्रणाली ही ठीक है। वह एक मनोवैज्ञानिक प्रणाली कही जाती है। इसे पक्षपात नहीं होने पाता और समाज में सभी को समानाधिकार मिल जाते हैं। इस प्रणाली के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को कमीशन प्राप्त करने का समान अवसर मिल जाता है। इस संशोधन के प्रस्तावक बता चुके हैं कि भारत की भविष्य की सेना में कमीशन उसी प्रकार दिये जाने चाहियें जैसे अखिल भारतीय नौकरियों के उच्च पदों के लिये नियुक्तियां की जाती हैं और मेरे विचार से यह अत्यावश्यक है कि उसके लिये भी नौकरियों के लिये नियुक्ति करने वाले बोर्डों के समान कोई संस्था होनी चाहिये। चाहे हम उसे देश-रक्षा की नौकरियों का कमीशन कहें या नौकरियों के लिये नियुक्ति करने वाला बोर्ड कहें इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि इस प्रकार की एक संस्था की आवश्यकता है।

***रायसाहब रघुराज सिंह** (पूर्वी रियासतों का समूह 1): उपाध्यक्ष महोदय, जो संशोधन पेश किया गया है उसके सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। देश-रक्षा की नौकरियों के लिये नियुक्ति का प्रश्न एक बहुत ही कला सम्बन्धी प्रश्न है। यह विषय देश-रक्षा के संगठन के अधीन होना चाहिये। यदि कोई देश-रक्षा

की नौकरियों का कमीशन स्थापित किया जायेगा तो उससे देश-रक्षा के संगठन के हाथ बंध जायेंगे। जहां तक मुझे मालूम है पहले भी कभी अफसरों की नियुक्ति के सम्बन्ध में सैनिक और असैनिक वर्गों का भेद-भाव नहीं किया जाता था। सैनिकों के सम्बन्ध में ही इस प्रकार का भेद-भाव बरता जाता था। युद्धकाल में नौकरियों के लिये नियुक्ति करने के लिये एक विशेष डाइरेक्टोरेट स्थापित की गई थी और उसने अपनी ही प्रणाली निकाली। मेरे विचार से इस विषय को रक्षा-विभाग के विवेक पर छोड़ देना चाहिये। यदि आप देश-रक्षा की नौकरियों के कमीशन को स्थापित करेंगे तो उससे देश-रक्षा के संगठन के अपने विवेक से निर्णय करने में बाधा पहुंचेगी।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इसका अत्यंत विरोध करता हूं कि ऐसा महत्वपूर्ण विषय केवल देश-रक्षा के संगठन की स्वेच्छा पर छोड़ दिया जाए। बहुत समय से इंग्लैंड और यूरोप के दूसरे देशों में इसके लिये आन्दोलन चल रहा है कि देश-रक्षा की सेनाओं के लिये भर्ती प्रजातंत्र के सिद्धांतों के अनुसार की जाए ताकि सभी वर्गों के लोग उसमें भर्ती किये जा सकें। यह सभी जानते हैं कि किसी विशेष समूह से भर्ती किये हुये अफसरों ने संतोषजनक कार्य नहीं किया है। इस लड़ाई में तथा पिछली लड़ाई में मित्र राष्ट्रों ने जो विजय प्राप्त की उसका श्रेय बहुत-कुछ जनसाधारण से भर्ती किये हुये अफसरों को है। यदि आप जनसाधारण को इसका अवसर देना चाहते हैं कि वे अपनी नेतृत्व की शक्ति को शिखर में पहुंचाये और उनको यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि इस शक्ति से वे देश-रक्षा की सेनाओं के विभिन्न अफसरों के पदों पर नियुक्त किये जा सकते हैं, तो जैसा कि मेरे मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने बताया है, यह बहुत ही आवश्यक है कि एक कमीशन स्थापित किया जाए। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि इसे संघीय पार्लियामेंट पर ही क्यों न छोड़ दिया जाए। श्रीमान्, यदि आपने असैनिक नौकरियों के बहुत से सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए इस विधान में एक पब्लिक सर्विस कमीशन के लिए विशेष व्यवस्था करना आवश्यक समझा है तो अवश्य ही यह न्यायसंगत ही होगा कि आप देश-रक्षा की सेवाओं के अफसरों की नियुक्ति के लिए भी इसी प्रकार की व्यवस्था करें। असैनिक नौकरियों के लिये आप उतने लोगों को भर्ती न करेंगे जितने कि आप देश-रक्षा की सेनाओं के लिये भर्ती करेंगें। इस काल में हमारी देश-रक्षा की सेनाओं को अपने को उतनी ही उच्च कोटि का बनाना है जितनी कि अन्य देशों की सेनाएं हैं। आप सभी जानते हैं कि हमारी सीमा के उस पार एक देश सोवियत रूस के नाम से प्रख्यात है। हमें इसका सावधानी से अध्ययन करना चाहिये कि रूसी सेनाओं का किस प्रकार निर्माण तथा संगठन हो रहा है और किस प्रकार उन्हें

[प्रो. एन.जी. रंगा]

शक्तिशाली बनाया जा रहा है। उनके अफसर समाज की प्रत्येक जाति व वर्ग से भर्ती किये जाते हैं और वे सामाजिक जीवन के प्रत्येक अंग से लिये जाते हैं। यदि आप चाहते हैं कि हमारी देश-रक्षा की सेनायें उस देश की सेनाओं के साथ प्रतियोगिता में टिक सकें तो यह अत्यंत आवश्यक है कि यथासम्भव सावधानी से एक ऐसे कमीशन द्वारा, जिसका सुझाव श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने किया है, ऐसे सुयोग्य व्यक्तियों को निष्पक्ष रूप से भर्ती किया जाए जो युद्धकाल में सेनानायक होने की क्षमता रखते हों।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** श्रीमान्, यह सच है कि जो मसविदा सभा के सामने पेश किया गया है उसमें देश-रक्षा की नौकरियों का कोई उल्लेख नहीं है। इसका एक कारण मैं यह बता सकता हूं कि वर्तमान भारत सरकार के कानून के अध्याय 1 से भाग 10 में जो बातें हैं उनको जिस संघीय विधान पर हम विचार कर रहे हैं उसमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। सन् 1935 ई. के भारत सरकार के कानून का वह अध्याय मुख्यतः ऐसे विषयों के सम्बन्ध में है जैसे कमांडर-इन-चीफ का वेतन, देश-रक्षा की नौकरियों के लिये नियुक्ति पर सम्राट का नियंत्रण, भारत-मंत्री का नियंत्रण, भारत-मंत्री को अपील करने का अधिकार, इत्यादि। जब हम अपना नया विधान बनायेंगे तो इनमें से कई बातें असामयिक हो जायेंगी। सम्भवतः इस कारण से भी जिस मसविदे पर हम विचार कर रहे हैं उसमें देश-रक्षा की नौकरियों के लिये विशेष व्यवस्था करना आवश्यक नहीं समझा गया। संशोधनकर्त्ता ने जो दूसरी बात कही है वह यह है कि देश-रक्षा की नौकरियों के सम्बन्ध में भर्ती करने और नौकरी की दशाओं को सुव्यवस्थित बनाने के लिये हमें पब्लिक सर्विस कमीशन के समान एक संस्था स्थापित करनी चाहिये। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मेरा तो यह विचार है कि विधान सम्बन्धी कानून में असैनिक नौकरियों के लिये भी पब्लिक सर्विस कमीशन की स्थापना के सम्बन्ध में आदेश रखने से कोई विशेष लाभ न होगा। इस प्रकार के कमीशन की स्थापना संघीय कानून द्वारा क्यों नहीं की जाए, आखिर पब्लिक सर्विस कमीशन है क्या चीज? यह संस्था भर्ती का प्रबन्ध करती है, इस सम्बन्ध में सलाह देती है कि किन लोगों को नियुक्त किया जाना चाहिये, किन मामलों में सजा से माफी पाने के लिये अपील की जानी चाहिये और नियुक्ति तथा नौकरी की दशाओं के सम्बन्ध में किस प्रकार के नियम होने चाहियें। यह सच है कि इन नियमों को व्यवहार में लाने के लिये हम एक ऐसी संस्था स्थापित करते हैं जिसके सदस्यों का उसी प्रकार स्वतंत्र पद होता है जैसे कि हाईकोर्ट के न्यायाधीशों का, क्योंकि

यह आवश्यक है कि इन नियमों को निष्पक्ष रूप से व्यवहार में लाया जाए। हमने असैनिक नौकरियों के सम्बन्ध में विधान सम्बन्धी कानून द्वारा पब्लिक सर्विस कमीशन की व्यवस्था करने के बारे में बढ़-चढ़ कर बातें कही हैं। देश-रक्षा की नौकरियों के बारे में भी यदि इसी प्रकार के प्रबन्ध की आवश्यकता समझी जाए तो संघीय कानून द्वारा उसकी व्यवस्था किये जाने में मुझे कोई विशेष आपत्ति नहीं है। मैं एक बात और कहना चाहता हूं। असैनिक नौकरियों और देश-रक्षा की नौकरियों में एक आवश्यकीय भेद रखा गया है। देश-रक्षा की नौकरियों में कठोर अनुशासन की आवश्यकता होती है और मेरे विचार से ऐसी असैनिक नौकरियों के लिये भी जिनमें कठोर अनुशासन की आवश्यकता होती है, यह बहुत वांछनीय नहीं है कि नियुक्ति और अनुशासन के मामलों में पब्लिक सर्विस कमीशन को अधिकार दिया जाए। मैं आपको भारत सरकार के कानून की धारा 243, जो असैनिक नौकरियों के अध्याय में है, पढ़कर सुनाऊंगा:

> ''इस अध्याय के पहले के आदेशों के बावजूद भारत की विभिन्न पुलिस सेनाओं की निम्न श्रेणियों की नौकरी की दशायें वही होंगी जो उन सेनाओं में से प्रत्येक से सम्बन्धित कानूनों द्वारा निश्चित की जायें या उनमें वर्णित हों।''

मैं यह बताना चाहता हूं कि सैनिक और असैनिक वर्गों में अन्तर, देश-रक्षा की सेनाओं में विभिन्न जातियों का प्रतिनिधित्व, विभिन्न नौकरियों में प्रांतों का प्रतिनिधित्व जैसे सभी प्रश्न निस्संदेह महत्वपूर्ण हैं। परन्तु मैं इस सभा को बताना चाहता हूं कि इन मामलों के सम्बन्ध में कैसी नीति अपनाई जाये, यह कोई ऐसी बात नहीं है जिसका निर्णय हमारा स्थापित किया हुआ कमीशन करे। शासनारूढ़ सरकार ही नीति निर्धारित कर सकती है। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि यदि आप इन बातों के सम्बन्ध में अन्याय और भेदभाव नहीं होने देना चाहते तो इसके लिये आपको सरकार ही से कहना-सुनना होगा और इसका प्रबन्ध करना होगा कि वह न्यायोचित नीति का अनुसरण करे। इसमें सन्देह नहीं कि नीति को व्यवहार में लाने का प्रश्न भी है और मेरे विचार से आप संघीय कानून द्वारा एक संस्था स्थापित कर सकते हैं। सशस्त्र सेनाओं में इस समय जो नियुक्ति के बोर्ड हैं वे ही अच्छे समझे जा सकते हैं या कोई दूसरी संस्था स्थापित की जा सकती है परन्तु ऐसी संस्थायें हम भविष्य में जो संघीय कानून बनायेंगे उसी के द्वारा या उसी के आदेशानुसार स्थापित की जा सकती हैं। इसलिये मैं तो यह कहूंगा कि हमें विधान में इस प्रकार की एक साधारण व्यवस्था कर देनी चाहिये कि देश-रक्षा की नौकरियों के लिये नियुक्ति उनकी दशाओं इत्यादि के बारे में संघीय कानून

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

में उचित व्यवस्था होगी और अन्य बातों का निर्णय भविष्य के लिये छोड़ देना चाहिये। मैं माननीय संशोधनकर्ता को यह आश्वासन दे सकता हूं कि हम इस प्रकार के एक साधारण आदेश रखने का प्रयत्न करेंगे, यद्यपि उसके शब्द वे नहीं होंगे जो उनके संशोधन के हैं। यदि उनको इससे संतोष हो जाए तो मैं उनसे प्रार्थना करूंगा कि वे अपना संशोधन वापस ले लें।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** वह तो केवल उसके रूप का प्रश्न है। माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर इस संशोधन के आशय को किसी न किसी रूप में, जिसे वे ठीक समझें, स्थान देने के लिये तैयार हैं। इसलिये मुझे इस संशोधन को सभा में पेश करने में कोई दिलचस्पी नहीं है। मैं इसे वापस लेने के लिये सभा की आज्ञा चाहता हूं।

सभा की आज्ञा से संशोधन वापस ले लिया गया।

***उपाध्यक्षः** खण्ड 22 सभा के सामने रखा जाता है। संशोधन वापस ले लिया गया है।

खण्ड 22 स्वीकार कर लिया गया।

खण्ड 23

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आंयगरः** मैं खण्ड 23 पेश करता हूं । वह इस प्रकार है:

> ''इस विधान के आदेशों के विपरीत न जाते हुये संघीय पार्लियामेंट समय-समय पर संघीय व्यवस्थापिका की किसी सभा के लिये चुनाव के बारे में या उससे सम्बन्धित सभी मामलों के बारे में, जिनमें निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाबन्दी भी सम्मिलित है, आदेश बना सकती है।''

***उपाध्यक्षः** खण्ड 23 में श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर और श्रीमती जी. दुर्गाबाई ने संशोधन पेश किया है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, मैं यह पेश करता हूं कि:

खण्ड 23 के अन्त में निम्नलिखित जोड़ दिया जाए:

''प्रथम चुनाव और बाद के चुनाव परिशिष्ट के आदेशों के अनुसार होंगे (जो विधान के साथ नत्थी किया जायेगा) और निर्वाचन-क्षेत्र उसी प्रकार होंगे जैसे वे दूसरे परिशिष्ट में दिये हुये होंगे।''

मैं दूसरे वाक्य को पेश नहीं कर रहा हूं, जो इस प्रकार है:

''उक्त परिशिष्टों में किसी समय संघीय व्यवस्थापिका के किसी कानून द्वारा परिवर्तन किये जा सकते हैं।''

मैं पहले ही वाक्य पर रुक जाता हूं।

इसकी आवश्यकता इस प्रकार है कि हमने खण्ड 23 में यह प्रस्ताव किया है कि संघीय पार्लियामेंट के चुनावों को समय-समय पर संघीय व्यवस्थापिका के कानूनों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है और निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमाबन्दी भी की जा सकती है। मैं इस विधान में ही प्रथम चुनावों और निर्वाचन-क्षेत्रों की प्रथम सीमाबन्दी की व्यवस्था करना चाहता हूं। हमने प्रान्तीय विधान में, जिसे हमने हाल में अर्थात् एक या दो सप्ताह पहले स्वीकार किया, इस प्रकार की व्यवस्था की है। इसी आधार पर मैंने यह संशोधन पेश किया है। इसलिये मैं इस संशोधन को सभा की स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** श्रीमान्, दूसरे वाक्य को निकाल देने पर, जैसा कि प्रस्तावक महोदय भी चाहते हैं, मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***उपाध्यक्षः** मैं इस संशोधन को सभा के सामने रखता हूं।

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्षः** अब मैं इस खण्ड को उसके संशोधित रूप में सभा के सामने रखता हूं।

खण्ड 23 संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया गया।

खंड 24

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** श्रीमान् मैं खण्ड 24 पेश करता हूं:

''24. इस विधान के अधीन होने वाले सभी संघीय या प्रान्तीय चुनावों के निरीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का अधिकार, जिसमें ऐसे चुनावों से उत्पन्न होने वाले संदेहों और झगड़ों पर निर्णय देने के लिये चुनाव सम्बन्धी ट्रिब्यूनलों की नियुक्ति का अधिकार भी सम्मिलित है, एक कमीशन को दिया जायेगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेंगे।''

श्रीमान्, इस खण्ड का उद्देश्य यह है कि देश में सभी चुनाव, चाहे वे संघीय हों या प्रान्तीय, निष्पक्ष रूप से किये जायें। विचार यह है कि राष्ट्रपति एक कमीशन नियुक्त करें और उन्हीं के तत्वावधान में चुनाव और चुनाव के बाद की इन सभी बातों का नियमन होगा और उन पर नियंत्रण रखा जा सकेगा। सभा यह जानती ही है कि चुनाव की प्रणाली व चुनाव के संचालन के दुरुपयोग और चुनाव के समय में दुराचार की शिकायतें सारे देश में की जाती हैं। इस खण्ड का उद्देश्य यही है कि चुनाव के सभी कार्यों पर स्वतंत्र रूप से केन्द्र का नियंत्रण हो।

***श्री एच.वी. पातस्करः** श्रीमान्, मैं यह पेश करता हूं कि:

''खण्ड 24 में 'सभी संघीय या प्रान्तीय चुनावों' की जगह 'सभी संघीय चुनावों' रखा जाए और 'या प्रान्तीय' शब्दों को निकाल दिया जाए।''

इस संशोधन के बाद खण्ड 24 इस प्रकार होगा:

''24– इस विधान के अधीन होने वाले सभी संघीय चुनावों के निरीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का अधिकार, जिसमें ऐसे चुनावों से उत्पन्न होने वाले संदेहों और झगड़ों पर निर्णय देने के लिये चुनाव सम्बन्धी ट्रिब्यूनलों की नियुक्ति का अधिकार भी सम्मिलित है, एक कमीशन को दिया जायेगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेंगे।''

श्रीमान्, इस संशोधन में यह विचार निहित है कि जहां तक संघीय व्यवस्थापिका के लिये चुनाव का सम्बन्ध है निरीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त होना चाहिये, परन्तु जहां तक प्रांतीय चुनावों का सम्बन्ध है यह अधिकार गवर्नर के लिये या प्रांत के ही किसी सुयोग्य अधिकारी के लिये छोड़ा जाना चाहिये।

इस प्रकार की व्यवस्था इन कारणों से की जानी चाहिये। श्रीमान्, अध्याय 7 को देखने से मालूम होगा कि खण्ड 23 संघीय चुनावों, संघीय पार्लियामेंट के लिये चुनावों के बारे में है। स्वभावत: खण्ड 24 जो उसके बाद ही आता है संघीय पार्लियामेंट के ही चुनावों के बारे में होना चाहिये। यह मालूम पड़ता है कि जो लोग विधान का मसविदा बना रहे थे उनके हृदय में यह विचार उठा होगा कि इस खण्ड में हम प्रांतीय चुनावों को भी क्यों न सम्मिलित कर दें। जहां तक मैं प्रस्तावक महोदय के भाषण से समझ पाया हूं, प्रान्तीय चुनावों के निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण का अधिकार संघ के अध्यक्ष को देने के पक्ष में उनका प्रधान तर्क यही रहा है कि इससे चुनावों में पक्षपात नहीं होगा। मैं इस सम्बन्ध में बाद को कहूंगा। परन्तु श्रीमान, चाहे जो कुछ भी कहा जाये, प्रांतीय चुनावों के निरीक्षण की व्यवस्था करने के लिये यह उचित स्थान नहीं है। इस अध्याय में हम संघीय चुनावों के बारे में विचार कर रहे हैं और उन्हीं के बारे में विचार कर भी सकते हैं। इसके अतिरिक्त दो बहुत बलशाली कारणों से इस प्रकार की व्यवस्था न होनी चाहिये। अभी तक हम यह देखते आये हैं कि जहां तक प्रांतीय चुनावों के निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण का सम्बन्ध है वह प्रान्तीय गवर्नरों के हाथ में रहा है। अब हम प्रान्तों में प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुने हुये गवर्नरों को रखने जा रहे हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसे गवर्नर को यह काम क्यों नहीं दे दिया जाता।

इसके अतिरिक्त दूसरी कठिनाई यह है कि सुदूर प्रान्तों में चुनावों का निरीक्षण, निर्देशन तथा नियत्रंण करने में संघ के अध्यक्ष को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। जो लोग प्रान्तों में ही रहेंगे वे इसे अच्छी तरह कर सकते हैं। संघ के अध्यक्ष के पास बहुत काम रहेंगे और मेरे विचार से प्रांतीय चुनावों के निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण के भार को भी उन पर डालना उचित नहीं होगा।

प्रस्तावक महोदय ने केवल यही बात कही कि यह व्यवस्था इसलिये की गई है कि चुनावों में निष्पक्षता हो। मेरी समझ में नहीं आता कि चाहे निरीक्षण का कार्य संघ के अध्यक्ष को सौंपा जाए या प्रांतीय गवर्नर को, इससे क्या अन्तर पड़ता है? यदि सावधानी से काम लिया जाए तो ये दोनों निष्पक्ष हो सकते हैं। इन शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं इस संशोधन को सभा की स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***श्री टी. प्रकाशम्** (मद्रास: जनरल): श्रीमान्, मैं इस संशोधन का समर्थन करना चाहता हूं। इस सम्बन्ध में प्रान्तों को केन्द्र के साथ न बांधना चाहिये। हाल में

[श्री टी. प्रकाशम्]

और सन् 1937 ई. में प्रान्तों ने बहुत बड़े-बड़े चुनाव किये हैं। आगामी चुनावों में...।

श्री रामसहाय (ग्वालियर राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, मेरा एक पाइंट ऑफ आर्डर है। अभी सारे अमेंडमेंट मूव नहीं हुये हैं और आपने भी अभी असली प्रस्ताव या तरमीम पर बोलने की इजाजत नहीं दी है। ऐसी सूरत में क्या मि. प्रकाशम् का अपनी बहस शुरू करना मुनासिब होगा?

***एक माननीय सदस्य:** पहले सभी संशोधनों को पेश हो जाने दीजिये।

***उपाध्यक्ष:** मैं इससे सहमत हूं कि पहले सभी संशोधनों का ही पेश किया जाना अच्छा होगा।

संशोधन नं. 345 श्री मुनिस्वामी पिल्ले और अन्य लोग!

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** श्रीमान्, हम प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुनाव करने जा रहे हैं। मैं इसे आवश्यक समझता हूं कि जो ट्रिब्यूनल बनाया जाए उसमें परिगणित जातियों और अन्य अल्पसंख्यकों के भी प्रतिनिधि होने चाहियें। परन्तु मुझे ज्ञात हुआ है कि इन मामलों के बारे में नियम बाद को बनाये जायेंगे। इसलिये मैं इस संशोधन (नं. 341) को अभी पेश नहीं करता।

(सूची 2 के संशोधन नं. 346 और 347 और पूरक सूची 1 का संशोधन नं. 20 पेश नहीं किये गये।)

***श्री टी. प्रकाशम्:** श्रीमान्, इस संशोधन में यह प्रस्ताव किया गया है कि इस खण्ड से प्रान्तों को निकाल देना चाहिये। वास्तव में इसी प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिये थी। मेरी समझ में नहीं आता कि इस खण्ड में प्रान्तों का क्यों उल्लेख किया गया है। प्रान्तों के सम्बन्ध में यह बिल्कुल अनावश्यक है कि केन्द्र के स्थापित किये हुये किसी कमीशन के साथ उनका गठबंधन किया जाए। प्रान्त अपना काम हर प्रकार अच्छी तरह चलाते रहे हैं और उन्हें किसी आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ा है। सन् 1936 ई. में और हाल में सन् 1946 ई. में बहुत बड़े चुनाव लड़े गये हैं। इसलिये इसे आवश्यक न समझना चाहिये कि प्रान्तों को इस खण्ड में स्थान दिया जाए और उन्हें केन्द्र के किसी संगठन के अधीन रखा जाए। श्रीमान्, आगामी चुनाव, जो प्रौढ़ मतगणना के आधार पर लड़े जायेंगे,

बहुत बड़े पैमाने पर होंगे और उनका महत्व भी बहुत होगा। प्रान्तों को इसकी पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि अभी तक वे इस कार्य को जिस प्रकार चलाते रहे हैं उसी प्रकार अब भी स्वयं चलायें। यह विचार कि केन्द्रीय संगठन का प्रान्तों के काम पर नियंत्रण हो अव्यावहारिक है। केन्द्र को प्रत्येक विभाग के मामले में और इस सम्बन्ध में भी बहुत काम करना पड़ता है। इसलिये श्रीमान्, इस सम्बन्ध में अधिक तर्क देने की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि संशोधन में कहा गया है, इस खण्ड में प्रान्तों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिये। श्रीमान्, मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं। इस सम्बन्ध में प्रान्तों का केन्द्र के साथ गठबन्धन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

***डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय मेरे विचार से यह उचित होगा कि मैं इस सभा को बताऊं कि इस खण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार हुई। यद्यपि यह खण्ड विधान के उस भाग में आता है जिसमें संघ की चर्चा है, परन्तु वास्तव में इस पर मौलिक अधिकारों की कमेटी ने विचार किया था। मौलिक अधिकारों की कमेटी इस नतीजे पर पहुंची कि यदि चुनावों को केवल प्रबन्धकारिणी के हाथ में छोड़ दिया जाए तो अल्पसंख्यकों और चुनावों के बारे में कोई आश्वासन नहीं दिया जा सकता। बहुत से लोगों ने यह सोचा कि यदि प्रबन्धकारिणी के तत्वावधान में चुनाव हुए और यदि उसे अफसरों को एक जगह से दूसरी जगह बदलने का अधिकार हुआ, जो अधिकार उसे होना भी चाहिये, तो इससे किसी ऐसे उम्मीदवार को, जिसे शासनारूढ़ दल चाहता हो, समर्थन प्राप्त हो सकता है और इससे जिस स्वतंत्र चुनाव को सभी लोग चाहते हैं उसमें अवश्य ही दोष आ जायेगा। इसलिये मौलिक अधिकारों की कमेटी के सदस्यों ने यह एकमत से निश्चय किया कि चुनावों को पवित्र और न्यायमुक्त ढंग से करने के लिये सबसे अच्छी सुरक्षा यह है कि उन्हें प्रबन्धकारिणी के हाथ में न रखना चाहिये, बल्कि स्वतंत्र अधिकारियों को सौंप देना चाहिये।

खण्ड 23 में मौलिक अधिकारों की कमेटी में जिस योजना पर विचार हुआ था उसका पूरा ब्यौरा नहीं दिया हुआ है। मैं सभा को यह बताना चाहता हूं कि मौलिक अधिकारों की कमेटी के सदस्यों के मस्तिष्क में यह योजना थी कि सारे भारत के चुनावों के नियमन के लिये राष्ट्रपति एक केन्द्रीय कमीशन स्थापित करेंगे। यद्यपि इस योजना की कल्पना की गई थी कि चुनावों के निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण के लिये राष्ट्रपति एक केन्द्रीय कमीशन स्थापित करेंगे, परन्तु इसकी कल्पना कदापि नहीं की गई थी कि दिल्ली में या किसी केन्द्र में, जहां राजधानी हो,

[डा. बी.आर. अम्बेडकर]

केवल एक ही कमीशन होगा। योजना यह थी कि एक केन्द्रीय कमीशन होगा जो सम्भवत: संघीय पार्लियामेंट के चुनाव का काम करेगा परन्तु इस कमीशन के अधीन प्रत्येक प्रान्त में एक कमीशन होगा या यदि कोई प्रान्त छोटे हों तो दो-तीन प्रान्तों के लिये एक ही कमीशन होगा ताकि उनका चुनाव सम्बन्धी कार्य स्थानीय कमीशन द्वारा ही किया जाए। पहले से ही यह विचार था कि इसका विकेन्द्रीकरण किया जाए अर्थात् संघीय चुनावों के लिये एक केन्द्रीय कमीशन हो और विभिन्न प्रान्तों में होने वाले चुनावों के लिए कई कमीशन हों। मेरे कहने का मतलब यह है कि यदि यह योजना व्यवहार में आई तो श्री पातस्कर ने जिस उद्देश्य से इस संशोधन को पेश किया है उसकी पूर्ति हो जायेगी, क्योंकि जहां तक मैं समझ पाया हूं वे यही चाहते हैं कि प्रान्तों में चुनावों के कार्य के लिये स्थानीय अधिकारी हो या एक स्थानीय कमीशन हो। मेरे विचार से हमारा उद्देश्य यही था, यद्यपि खंड 24 में उस योजना का उल्लेख नहीं है। हमारे मस्तिष्क में नि:सन्देह यही विचार था। फिर भी यदि मेरे मित्र श्री पातस्कर अपने संशोधन पर जोर देते हैं तो मैं उनसे एक विषय के बारे में एक प्रश्न पूछता हूं, क्योंकि उनका संशोधन पढ़ने से वह संदिग्ध ही रह जाता है। वे 'सभी संघीय या प्रान्तीय चुनावों' शब्दों को निकाल देना चाहते हैं और उनकी जगह 'सभी संघीय चुनावों' शब्दों को रखना चाहते हैं। यदि वे एक विषय में मुझे संतुष्ट कर दें तो मुझे उनके संशोधन से कोई आपत्ति नहीं रहेगी। मैं उनसे यह पूछना चाहता हूं कि क्या वे इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, क्योंकि आखिर हमें सिद्धांत की ही तो चिन्ता है, कि चुनाव का कार्य प्रबन्धकारिणी के बाहर किसी स्वतंत्र संस्था के हाथ में होना चाहिये। यदि वे इसे स्वीकार करते हैं और सभा यह स्वीकार करती है कि खण्ड 24 के समान ही एक खण्ड विधान के प्रान्तीय भाग में भी सम्मिलित किया जाना चाहिये तो मुझे उस संशोधन से कोई आपत्ति नहीं है। मेरी यह इच्छा नहीं है कि केन्द्रीकरण ही किया जाए। हमारे मस्तिष्क में यही था कि चुनाव-कार्य सरकार के हाथों से ले लिया जाए।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** अधिक बहस करने के पहले मैं इस संशोधन के प्रस्तावक की हैसियत से यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं अपने मित्र डा. अम्बेडकर से इस विषय में पूर्णतया सहमत हूं कि चुनावों का निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण किसी प्रबन्धकारिणी के अधिकार में नहीं होना चाहिये और किसी स्वतंत्र संस्था को इसका अधिकार होना चाहिये और इस सम्बन्ध में प्रान्तीय विधान में व्यवस्था की जा सकती है।

***श्री के. सन्तानम्:** मेरे विचार से यह खण्ड बहुत विस्तृत है। चुनावों से हमारा अर्थ क्या है? सबसे पहले हमें निर्वाचकों की सूचियों को तैयार करना होता है। फिर चुनावों के समय हमें निर्वाचन-शालाओं और निर्वाचन करने वाले अफसरों का प्रबन्ध करना होता है। उसके बाद पर्चियां ली जाती हैं, उनकी गिनती की जाती है, इत्यादि। मेरे विचार से जब सार्वभौम प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुनाव होगा तो प्रन्तीय सरकार के सभी कार्यकर्ताओं को चुनाव के काम में लगाना पड़ेगा। इसलिये जब तक प्रबन्ध का पूरा अधिकार सरकार के हाथ में न होगा, कोई भी स्वतंत्र कमीशन प्रान्तीय सरकार के सभी कर्मचारियों पर नियंत्रण नहीं रख सकता। कुछ मामले जैसे चुनाव के ट्रिब्यूनल, उम्मीदवारों की योग्यता पर विचार, नामजदगियों पर आपत्ति आदि किसी स्वतंत्र संस्था को सौंपे जा सकते हैं परन्तु चुनावों का सारा काम उसको नहीं दिया जा सकता। मेरे विचार से यदि केन्द्रीय चुनावों या प्रान्तीय चुनावों का कार्य किसी स्वतंत्र कमीशन को सौंपने का प्रयत्न किया गया तो उससे कोई लाभ न होगा। वह उसे सम्हाल न पायेगा क्योंकि आजकल के चुनावों में सरकार के सभी प्रबन्धात्मक तथा आर्थिक साधनों का उपयोग करना होता है। इसलिये जब विधान का मसविदा बनाने का समय आयेगा तो इन प्रश्नों पर ध्यानपूर्वक विचार करना होगा। जहां तक कमीशनों का सम्बन्ध है उनको केवल वही काम दिया जाना चाहिये जो न्यायाधीन हो और जो प्रबन्धात्मक न हो। वह वास्तव में एक न्याय सम्बन्धी कमीशन होना चाहिये और प्रबन्ध सम्बन्धी कमीशन न होना चाहिये। प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य उस समय की सरकार को सौंपे जाने चाहिये और जिन मामलों में न्याय करना हो केवल ऐसे ही कार्य चुनाव के कमीशन को सौंपे जाने चाहियें, अन्यथा सारी योजना निष्फल हो जायेगी।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा: जनरल): श्रीमान्, खण्ड के वर्तमान रूप में कुछ अधिकार प्रान्तों के लिये छोड़ दिये गये हैं। चुनावों के निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण का अधिकार उन संघीय अधिकारियों को दिया गया है जो नये विधान के अधीन बाद को नियुक्त किये जायेंगे। यह एक निरर्थक बात है कि कोई अधिकारी बिना प्रान्त के सहयोग के चुनावों को चला सकता है। उसके लिये यह कार्य करना असम्भव है। मैं माननीय सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे कल्पना तो करें कि चुनाव किस प्रकार होते हैं। उनके लिये निर्वाचकों की सूचियां तैयार करनी होती हैं, इमारतों का प्रबन्ध करना होता है, निर्वाचनशालायें बनानी होती हैं, इत्यादि। इस सब कार्य को प्रान्तीय सरकार को ही करना होता है। कोई भी संघीय

[श्री विश्वनाथ दास]

अधिकारी, चाहे वे कितने ही शक्तिशाली हों, इस उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर सकते हैं। श्रीमान्, प्रान्तीय कर्मचारियों का सहयोग आवश्यक है कोई संघ भी इस उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर सकता। जो लोग चुनावों से परिचित हैं वे इससे सहमत होंगे कि संघीय अधिकारियों के लिये, चाहे वे कोई भी क्यों न हों, इस उत्तरदायित्व को पूरा करना सम्भव नहीं है और किसी कमीशन के लिये तो यह और भी कम सम्भव है। इस दशा में यह आवश्यक है कि चुनाव का कार्य प्रान्तों को ही सौंपा जाए। मैं डा. अम्बेडकर से कुछ हद तक इस सम्बंध में सहमत हूं कि इन चुनावों के नियंत्रण और निरीक्षण का काम किसी ट्रिब्यूनल या कुछ केन्द्रीय अधिकारियों को सौंपा जाए ताकि वे सावधानी से देखरेख कर सकें। कुछ जगहों और कुछ प्रान्तों में म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा प्रान्तीय असेम्बलियों के चुनावों का कटु अनुभव होने के कारण हम जानते हैं कि सब कुछ प्रान्तों पर ही छोड़ देना कितना भयानक होगा विशेषतया जब भविष्य में विभिन्न दलों के आधार पर चुनाव होंगे। इस परिस्थिति में स्पष्ट रूप से कार्यविभाजन की ओर ध्यान देना चाहिये अर्थात् प्रान्तों को तो चुनाव करने चाहिये और केन्द्रीय अधिकारियों को इन चुनावों के निरीक्षण तथा नियंत्रण पर निगाह रखनी चाहिये।

कुछ शब्द मैं चुनाव के ट्रिब्यूनल के बारे में कहना चाहता हूं। श्रीमान्, हमें ऐसे मामलों की सूचना मिली है और हमें इसका अनुभव भी हुआ है कि मंत्रिमंडलों और मंत्रिमंडलों की सलाह से प्रान्तों के गवर्नरों ने कुछ जगहों में न्यायोचित रूप से ठीक-ठीक ट्रिब्यूनल तक स्थापित नहीं किये। उनको अपने दल के काम में लगाया गया जिससे विपक्षी दलों को बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ा। इस अनुभव को देखते हुये उचित तो यह होगा कि यह कमीशन स्वतंत्र रूप से इन ट्रिब्यूनलों को स्थपित करे या वे संघीय अदालत जैसी स्वतंत्र संस्था द्वारा नियुक्त किये जायें। इस प्रकार यह उचित है कि चुनावों पर संघ का कुछ नियंत्रण रखा जाए परन्तु चुनावों को पूर्णरूप से संघ द्वारा ही चलाना एक असम्भव बात है और वास्तव में यह किसी भी संघ या ट्रिब्यूनल की शक्ति के बाहर है। इस दशा में मैं डा. अम्बेडकर से अपील करता हूं कि प्रस्तावक महोदय द्वारा उनके संशोधन के एक भाग की स्वीकृति के लिये वे सहमत हो जाएं।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार: जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि इस प्रश्न पर अब मतदान लिया जाए।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय,...

***उपाध्यक्ष:** देखिये, बहस समाप्त करने का प्रस्ताव पेश हो चुका है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, बहस समाप्त करने का प्रस्ताव इस सिद्धांत पर निर्भर है कि वाद-विवाद हो चुका है और सारी सभा उस प्रस्ताव को स्वीकार करती है। सभा का मत अभी नहीं लिया गया है। मैं हमेशा की तरह बहुत संक्षेप में अपना भाषण दूंगा।

श्रीमान्, मैं संशोधन का समर्थन करने के लिये उठा हूं। डा. अम्बेडकर ने इस आदेश के इतिहास का बड़ा मनोरंजक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। उन्होंने एक बहुत ही न्यायोचित और सीधा-साधा प्रश्न पूछा है। वह यह है कि चुनावों के झगड़ों का फैसला करने के लिये जो संस्था स्थापित करने का विचार है वह क्या एक स्वतंत्र संस्था होगी। श्री पातस्कर उनसे सहमत हैं और मैं भी उनसे सहमत हूं। परन्तु मैं डा. अम्बेडकर और उनकी विचारधारा के लोगों से पूछता हूं कि क्या किसी प्रान्त में कोई ऐसी संस्था नहीं है जो बहुत-कुछ स्वतंत्र हो? मेरे विचार से डा. अम्बेडकर के भाषण से प्रान्तों की योग्यता तथा उनकी स्वतंत्रता पर संदेह होने लगता है। क्या प्रान्तों में न्यायाधीशों के ट्रिब्यूनल स्वतंत्र नहीं हैं और क्या वहां न्यायाधीशों का विश्वास नहीं किया जाता? मैं यह कहता हूं कि प्रान्तीय अधिकारी अच्छी प्रकार जानते हैं कि जहां चुनाव होते हैं वहां की परिस्थिति क्या है। मेरे विचार से यह काम हाईकोर्ट के न्यायाधीशों और प्रान्तीय अधिकारियों द्वारा चुने हुए अन्य सदस्यों पर बिना आगा-पीछा किये हुए छोड़ा जा सकता है। मेरी यह राय है कि केन्द्र कुछ मामलों में प्रान्तों के साथ बहुत-कुछ सौतेला व्यवहार करता है, बहुत हस्तक्षेप किया जाता है और प्रान्तों की योग्यता बहुत सन्देह की दृष्टि से देखी जाती है। श्रीमान्, मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** श्रीमान्, आवश्यक बातों के सम्बन्ध में हम सभी सहमत हैं और जो संशोधन पेश किया गया है उसे स्वीकार करने के लिये मैं तैयार हूं यानी यह कि संघीय विधान का यह खण्ड केवल संघीय चुनावों तक ही सीमित रखा जाए। इस सम्बन्ध में मैं केवल एक बात बताना चाहता हूं और वह यह है कि अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित सलाहकार समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की थीं:

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

''संघीय या प्रादेशिक व्यवस्थापिका के सभी चुनावों के निरीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का अधिकार जिसमें चुनाव के ट्रिब्यूनल की नियुक्ति का अधिकार भी सम्मिलित है, संघ के या प्रदेश के, जैसी भी दशा हो, चुनाव के कमीशन को दिया जायेगा और वह सभी दशाओं में संघ के कानून के आदेशानुसार नियुक्त किया जायेगा।''

अब इसमें संघीय कमीशन के अतिरिक्त, जो संघीय चुनावों की देख-रेख करेगा, प्रदेश के चुनावों की देख-रेख के लिये भी प्रादेशिक कमीशन की नियुक्ति के लिये व्यवस्था है। इस विशेष सिफारिश को सभा ने अनुकरणीय प्रान्तीय विधान पर विचार करते समय स्वीकार कर लिया था। इस पैराग्राफ में जो सिद्धांत सम्बन्धी वक्तव्य है उसका सभा ने समर्थन किया था।

जहां तक श्री सन्तानम् के इस कथन का सम्बन्ध है कि इससे विभिन्न स्थानों में प्रबन्धकारिणी के न्यायोचित अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप हो सकता है, मुझे केवल यह बताने की आवश्यकता है कि इस खण्ड में केवल निरीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण की व्यवस्था की गई है। चुनावों का वास्तविक संचालन और इसके लिये आवश्यक प्रबन्धकारिणी इत्यादि का प्रबन्ध सम्बन्धित प्रांतीय सरकार की सहायता से करना होगा। उदाहरणार्थ, निरीक्षण या नियंत्रण की आवश्यकता ऐसे मामलों में पड़ेगी जैसे कि निर्वाचन स्थानों के सम्बन्ध में निर्णय, नियंत्रण करने वाले अफसरों का चुनाव, वोट देने के तरीके, पर्चियों की गोपनीयता अखण्ड रखने के सिद्धांत की सुरक्षा के लिये व्यवस्था इत्यादि। यह आवश्यक है कि इस प्रकार के मामले निष्पक्ष तथा न्यायोचित रूप से तय किये जाएं। अन्यथा इनके कारण अन्याय, दुराचार इत्यादि हो सकता है। इसलिये ऐसे मामले इस प्रकार के किसी निष्पक्ष ट्रिब्यूनल के हाथ में होने चाहियें। श्रीमान्, मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।

उपाध्यक्ष: संशोधन नं. 344, जिसका प्रस्ताव श्री पातस्कर ने किया है, सभा के सामने रखा जाता है:

''खण्ड 24 में 'सभी संघीय या प्रांतीय चुनावों' की जगह 'सभी संघीय चुनावों' रखा जाए और 'या प्रांतीय' शब्दों को निकाल दिया जाए।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्षः** अब मैं सभा के सामने खण्ड 24 को उसके संशोधित रूप में रखता हूंः

''इस विधान के अधीन होने वाले सभी संघीय चुनावों के निरीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का अधिकार, जिसमें ऐसे चुनावों से उत्पन्न होने वाले सन्देहों और झगड़ों पर निर्णय देने के लिये चुनाव सम्बन्धी ट्रिब्यूनलों की नियुक्ति का अधिकार भी सम्मिलित है, एक कमीशन को दिया जायेगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेंगे।''

खंड 24 उसके संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्षः** अब कल सुबह दस बजे तक के लिये सभा स्थगित की जाती है।

इसके बाद परिषद् बुधवार 30 जुलाई सन् 1947 ई. के सुबह के दस बजे तक के लिये स्थगित रही।